चतुर्थ परिच्छेद

वेद

भारतवर्षीय इतिहास के सम्बन्ध में इस विषय का महत्व ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यक्ता—वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने में युक्तियां-इस प्रश्न पर पाश्चिमी विद्वानों का सम्भ्रम ।

"वर्त्तमान सृष्ट्यारम्भ के पूर्व भी वेद विद्यमान था, क्योंकि यह सनातन ईश्वर का सनातन ज्ञान है अतः यह संसार मात्र के लिये है" ऋषि सन्तानों का ऐसा ही विश्वास है । आर्य्य लोग मानते हैं कि वेद को किसी मनुष्य वा मनुष्यों ने नहीं बनाया इसी कारण इस में किसी प्रकार का इतिहास नहीं है ।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब ग्रन्थकर्त्ता का ऐसा विश्वास है तो फिर एक देश विशेष के इतिहास में वेद विषय पर लिखने की क्या आवश्यकता है । इस का उत्तर यह है कि योरोपियन इतिहासवेत्ता वेद को प्राचीन आर्य्यों का प्रारम्भिक इतिहास मानते और उस से ऐतिहासिक घटनायें निकालते हैं इस लिये आवश्यक है कि भारतवर्ष के ऐतिहासिक प्रश्नों को हल करते समय इन दोनों पक्षों पर भी विचार किया जावे । वास्तव में इन दोनों पक्षों में इतना विरोध है कि एक को स्वीकार करने वाले का प्राचीन आर्य्यवर्त के विषय में ऐतिहासिक दृष्टि विंदु दूसरे पक्ष के मानने वाले के दृष्टि बिंदु से सर्वथा विपरीत हुए बिना नहीं रह सकता आर्य जाति का विश्वास है कि वेद सम्पूर्ण मानसिक, अध्यात्मिक तथा प्राकृतिक विद्याओं का भण्डार है, प्राचीन साहित्य, दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्वेद, विविध विज्ञान ये सब के सब वेद का ही आश्रय लेते हैं । इस के विपरीत यूरोपीय विद्वान् वेद को "बच्चों की बलबलाहट" बतलाते हैं और कहते हैं कि जिन ऋषियों ने इन्हें बनाया, वे असभ्य और सीधे थे, जब किसी नवीन दृश्य को देखते थे तो उन के हृदय आह्लाद और मन आश्चर्य्य से भर जाते थे और अपने इन मानसिक भावों का विकाश वे ग्रामीण रस युक्त कविता में प्रकाशित करते थे । जिन कविताओं का नाम वेद है वे तत्वपूजा विषयक हैं । वैदिक समय के पश्चात् देश में क्रमशः सुशिक्षा और सभ्यता का प्रचार हुआ । वैदिक समय की शिक्षा ग्रामीण प्रकार की थी, मनु के समय वह सभ्यता संकुल हुई इत्यादि । इतिहास का विद्यार्थी जब वैदिक समय की सभ्यता का पता लगाने

लगता है तो उस के सन्मुख उक्त दो प्रकार की सम्मतियां उपस्थित होती हैं और वह सन्देह में पड़ जाता है कि इन दो परस्पर विरुद्ध सम्मतियों में से किस को उचित और किस को अनुचित मानें । अतः आवश्यकता है कि हम उक्त दोनों प्रकार के विचारों की पूरी परीक्षा करें ।

वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने के विषय में विचार नहीं हो सकता जब तक कि " ईश्वरीय ज्ञान " की आवश्यकता सिद्ध न की जाय । कई पुरुष भ्रम में पड़ कर ऐसा कहने लगते हैं कि मनुष्य बिना किसी उच्च शक्ति की सहायता के ही क्रमशः अपनी उन्नति कर लेता है और पूर्ण सभ्य बन जाता है । इन का कथन कहां तक ठीक है इस का विवेचन भी साथ ही हो जाना चाहिये ।

संसार का अनुभव हमें बतलाता है कि बालक कभी उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि उसे कोई विद्वान् शिक्षा न दे । इस विषय पर मुग़ल बादशाह अकबर तथा असीरिया के महाराज असुर बाणीपाल (Asur Banipal) (जिसे यूनानी सार्डना पैलस कहते थे) ने विशेष प्रकार से विचार किया था महाराज असुरबाणीपाल ने एक बालक को मनुष्यों के प्रायः सब प्रकार के संस्कारों से बचाने के लिये एक जंगल में बारह वर्ष तक रक्खा था ताकि उसे मानुषी भाषा ज्ञात न हो उस बालक की सेवा के लिये भी गूंगी तथा बहरी स्त्रियां नियत की गई थीं। बारह वर्ष के पश्चात् जब वह बालक महाराज असुर बाणीपाल के दर्बार में लाया गया तो वह मानुषी भाषा बोल न सकता था केवल बकरे की तरह में में करने लगा । अनुसन्धान करने पर ज्ञात हुआ कि यह बालक जंगल में जहां रहता था वहां एक बकरी बंधी रहती थी उसी से बालक ने में में करना सीख लिया । अकबर ने भी इसी प्रकार परीक्षा की थी और उस परीक्षा का परिणाम भी वही निकला था ।

कई वर्ष हुए कि आर्य्य अनाथालय बरेली में एक बालक लाया गया था जो कच्चा मांस खाता था और भेड़िये की तरह चलता था । अनुसन्धान करने पर ज्ञात हुआ कि इस बालक को भेड़िया उठा ले गया था और उसी ने इसे पाला था यदि वह अनाथालय में न लाया जाता तो कुछ दिनों में वह भेड़िये के सब दुर्गुण सीख लेता और उस में मनुष्यता बिलकुल न आती ।

इन दृष्टान्तों से सिद्ध होता है कि मनुष्य स्वयम् कभी उन्नति नहीं कर सक्ता जब तक कि उसे कोई शिक्षक न मिले । बुद्धि अपने आप उन्नत नहीं होती। बुद्धि

का बहिरङ्ग ज्ञान के साथ वैसा ही सम्बन्ध है जैसे कि दियासलाई का अग्नि के साथ । दियासलाई में जलने की शक्ति तो होती है परन्तु जब तक उस को अग्नि अथवा रगड़ के द्वारा उष्णता नहीं पहुंचाई जाती वह जल नहीं सकती । इसी प्रकार बुद्धि में ज्ञान धारण शक्ति तो है परन्तु जब तक उस का सम्बन्ध किसी ज्ञानी के साथ न हो बुद्धि में ज्ञान आ नहीं सकता । अब विचारना यह चाहिये कि वर्तमान सृष्टि के आरम्भ में जब सब मनुष्य बुद्धि में बालक के समान थे और आज कल की तरह एक दूसरे को शिक्षा नहीं दे सकते थे तो ज्ञान का आरम्भ किस प्रकार हुआ । निश्चय है कि मनुष्यों की अपेक्षा किसी उच्च चैतन्य शक्ति ने उन्हें ज्ञान दिया होगा । परन्तु वह उच्च चैतन्य शक्ति परमात्मा के बिना कोई अन्य सिद्ध नहीं हो सकती अतः सिद्ध हुआ कि परमात्मा ने ही इस सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को ज्ञान दिया । यदि वह ज्ञान न देता तो मनुष्य भी पशुओं के समान ज्ञान हीन होते अथवा पशुओं की तरह इन में भी केवल नैसर्गिक सहज बुद्धि होती । आज कल कोई नहीं देखता कि बन्दर अपने आप किसी प्रकार की उन्नति करता ही नहीं ऐसा सुनने में आता है कि आज से ५०० पांचसौ वर्ष पूर्व बन्दरों की जो अवस्था थी उस में किसी प्रकार का परिवर्तन हुआ हो । बन्दरों की बात तो दूर रही आज कल भी ऐसी मनुष्य जातियां उपस्थित हैं जो पहले कभी सभ्य थीं और फिर गिर-गई क्योंकि अन्य सुशिक्षित जातियों में से इन में शिक्षकों का आना बन्द होगया ऐसी गिरा हुई जातियां जो शताब्दियों से दुरावस्था को प्राप्त हैं वह भी अभी तक स्वप्रयत्न से उच्चावस्था को प्राप्त नहीं हुई । एक पतित जाति अन्दामन द्वीप में निवास करती है जिस का नाम निगरेटा है । इन लोगों में कोई लिपि नहीं है । न ये कपड़े बुनना जानते और न सीना और न खेती ही कर सकते हैं । इन्हें लोहा, पीतलादि धातों का प्रयोग बिलकुल नहीं आता । आग इन के यहां बराबर जलती र-रहती है । जब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं जलती हुई आग अपने साथ ले जाते हैं । उन में ऐसा कदाचित् ही कोई मनुष्य होगा जो दश तक गिन सके । किसी प्रकार यदि कोई पांच तक भी गिन ले तो वह गणितज्ञ माना जाता है । वे कपड़े नहीं पहनते कभी २ पत्तों से शरीर ढक लेते हैं । वे न तो ईश्वर की प्रार्थना करते और न किसी प्रकार की पूजा परन्तु ऐसा विश्वास रखते हैं कि एक कोई परमात्मा है जो लोगों को दण्ड देने के लिये जल प्लावन भेजा करता है । उन का यह भी विश्वास है कि समुद्र और नदियों के भिन्न भिन्न देवता हैं परन्तु इन देवताओं

की आराधना का कष्ट वे कभी नहीं उठाते । इन के भीतर न कोई इतिहास है और न कोई लंबी चौड़ी लोक कथा, शनैः २ इस जाति का नाश हो रहा है ।

यदि स्वभावतः उत्तरोत्तरोन्नति का विचार ठीक है अर्थात् मनुष्य जाति स्वयम् बिना किसी अन्य महान् चेतन की सहायता के उन्नति कर सकती है तो क्या कारण कि उक्त निगरेटा जाति शताब्दियों से हीनावस्था में पड़ी रही और उस ने किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं की ।

अतः ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता सिद्ध हो गई । अब यह विवेचनीय है कि ईश्वरीय ज्ञान है कौन सा ?

आर्य्यावर्त्त के प्राचीन ऋषि मुनि तथा वर्त्तमान समय के क्रोड़ों पौराणिक भी "वेद" को ईश्वरीय ज्ञान मानते आए और मानते हैं, पारसी, लोग "ज़िन्द अवस्था" को वेद मानते हैं, ईसाइयों का मत है कि बाइबिल ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक है, मुसल्मानों का यह सिद्धान्त है कि क़ुरान ईश्वरीय ज्ञान है। यह सब कथन तो ठीक हो नहीं सकते अतः कुछ ऐसी परीक्षाएं नियत करनी चाहियें जिन से उक्त कथनों के सत्यासत्य का निर्णय हो सके ।

परीक्षाएं

(क) **ईश्वरीय ज्ञान** का पहला लक्षण यह है कि वह अपने आप को ईश्वरीय ज्ञान कहे अर्थात् उस के नाम से यह टपके कि वह ज्ञान है न कि पुस्तक। पुस्तक बनाने वाला मनुष्य हो सकता है न कि परमात्मा । परमात्मा साकार तो है ही नहीं कि वह बैठ कर पुस्तक लिखेगा, वह तो केवल हृदयों में ज्ञान का प्रकाश करता है ।

ज़िन्द अवस्था का अर्थ है " पवित्र लेख की व्याख्या " अतः इस शब्दार्थ से सिद्ध होता है कि किसी धर्मात्मा पुरुष ने इसे लिखा है ।

"बाइबल" शब्द यूनानी धातु "बिबालिया" से निकला है जिस का अर्थ बहुत सी पुस्तकें हैं । बाइबल के दो भागों के नाम ओल्डटेस्टामेण्ट और न्युटस्टामेण्ट हैं जो लातिनी धातु " टेस्टर " से निकलता है जिस का अर्थ साक्षी होना है । अतः इन धात्वर्थों से हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि बहुत सी पुस्तकों को जमा करके बाइबल बनाई गई थी और उसमें जिन २ घटनाओं का वर्णन है उस के लिये

साक्षी भी एकत्रित की गई थी । अस्तु इस के नाम से तो यही सिद्ध होता है कि यह मनुष्यकी बनाई हुई है, ईश्वर की नहीं । ईश्वर निराकार सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है अतः ईश्वर के विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि उस ने बहुत सी पुस्तकें एकत्रित कीं अथवा साक्षी ढूंढ़ने गया ।

अल्कुरान एक संयुक्त शब्द है जो अर्बी के दो शब्दों से बना है, एक 'अल' दूसरा "कुरान" । "कुरान" "कर-आ" धातु से निकला है जिस का अर्थ 'पढ़ना' है अतः अल्कुरान का अर्थ हुआ वह लेख जो विशेष प्रकार से पढ़ा गया हो । इस से सिद्ध हुआ कि अल्कुरान भी लिखी हुई पुस्तक का नाम है न कि ईश्वर के ज्ञानका।

" ग्रन्थ साहब " का अर्थ तो स्पष्ट ही ग्रन्थ है अतः इस के विषय में विशेष लिखने की कोई आवश्यकता नहीं दीखती ।

" वद " " विद् " ज्ञाने धातु से निकला है । वेद का अर्थ है " ज्ञान " । यह किसी लेख वा पुस्तक का नाम नहीं प्रत्युत उस ज्ञान का नाम है जो परमात्मा ने मनुष्यों के कल्याणार्थ प्रकाशित किया है यजुर्वेद अ०४०मन्त्र ८ में लिखा है:—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजुर्वेद अ० ४० मं० ८ ॥

वह परमात्मा सब में व्यापक शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान्, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित, छिद्र रहित और अच्छेद्य, नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित, अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र, जो पाप युक्त पापकारी अथवा पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता, जो सर्वज्ञ, सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला, दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला, अनादि स्वरूप जिसकी संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश नहीं होता, जो माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि मरण को प्राप्त नहीं होता वह परमात्मा, सनातन अनादि स्वरूप अपने २ स्वरूप से उत्पत्ति विनाश रहित जीव रूप प्रजाओं के लिये यथावत् अर्थों ज्ञानों का उपदेश (वेदद्वारा) करता है ।

(ख) यह आवश्यक है कि परमात्मा अपने ज्ञान का दान सृष्टि के आरम्भ में दे । क्योंकि मनुष्य का काम इस के बिना निकल ही नहीं सकता । दूसरी बात यह है कि परमात्मा दयालु और न्यायकारी है वह ऐसा नहीं कर सकते कि सृष्टि

के आरम्भ से सहस्रों वर्षों तक शतों प्रसूतियों को अपने ज्ञान से वञ्चित रख पीछे से मनुष्यों को ज्ञान प्रदान करें । इस कसौटी पर भी यदि वेद, ज़िन्दावस्था, बाइबल कुरान और ग्रन्थसाहब जांचे जांय तो वेद ही ईश्वरीय ज्ञान ठहरता है क्योंकि कुरान बाइबल, ज़िन्दावस्था और ग्रन्थसाहब के विषयमें कोई भी ऐसा नहीं कहता कि ये सृष्टि की आदिमें हुए । कुरान को बने प्रायः १,३०० वर्ष हुए, बाइबल के ईसा-मसीह की यह १९०८ वीं शताब्दी है । ईसाइयों के हज़रत आदम को भी उन के मतानुसार उत्पन्न हुए प्रायः ६००० छः सहस्र वर्षों से अधिक नहीं हुवे । ज़िन्दा-अवस्था के विषय में युरोपीय विद्वानों की सम्मति है कि वह प्रायः ४००० चार सहस्र वर्षों का बना हुआ है सम्भव है कि यह अनुमान सर्वथा ठीक न हो परन्तु इस में सन्देह नहीं कि ज़िन्दाअवस्था महर्षि व्यास के समय से पीछे का अर्थात् पांच सहस्र वर्षों से कम दिनों का है क्योंकि ज़िन्दाअवस्था में महर्षि वेदव्यास का वर्णन आया है । उस में "शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः" इस वेद मन्त्र का वर्णन आया है और यह भी लिखा है कि जिस समय ईरान में वेदों का प्रचार था उस समय वहां धर्म बहुत फैला हुआ था । अतः सिद्ध हुआ कि ज़िन्द अवस्था वेद से बहुत पीछे हुआ । वेद को भारत के सभी ऋषि महर्षि सदा से अनादि मानते आये हैं । वेद सम्वत् वा सृष्टि सम्वत् अब तक बराबर चला आता है । ज्यों २ भूगर्भ विद्या की उन्नति होती जाती है, त्यों २ संसार के विद्वान् सृष्टि सम्वत् की ओर आ रहे हैं । कहां तो योरोप में पहिले यह माना जाता था कि संसार को बने केवल छःसहस्र वर्ष व्यतीत हुए हैं और कहां अब वहां के विद्वानों का यह मत हो रहा है कि यह संसार क्रोड़ों वर्षों से चला आता है । क्या कोई आश्चर्य्य की बात होगी यदि उक्त विद्वान् कतिपय वर्षों में वेद में बतलाए हुए सृष्टि सम्वत् को ही ठीक मानने लगें और ऋषियों की भांति इन का विश्वास भी वेदों पर जम जायं !

कोई समय था जब कि यूरोपीय विद्वान् यह कहा करते थे कि वेदों को बने प्रायः ३४०० चौंतीस सौ वर्षों से अधिक नहीं हुए । परन्तु प्राचीन इतिहासों का जब अधिक अन्वेषण होने लगा तो पता लगा कि आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व इस देश का मिश्र के साथ वाणिज्य सम्बन्ध था और इसी प्रकार का सम्बन्ध प्रायः ५००० पांच सहस्र वर्ष पूर्व इस देश का बेबिलोनिया के साथ था * ! अतः

---

*In the ruins of Mugheir, ancient ur of the Chaldees, built of Urea or Ur-Bagash the first king of united Babylonia who ruled not less than

निश्चित होता है कि पांच सहस्र वर्षों ५००० से भी शताब्दियों पूर्व वेद विद्यमान थे क्योंकि कोई भी मनुष्य जाति दूर देशों के साथ तब तक व्यापार नहीं कर सकती जब तक कि उस ने पोत (जहाज़) बनाना न सीख लिया हो तथा साथ ही साथ कई प्रकार की अन्यान्य उन्नतियां भी न कर लीं हों । भारत के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित बाल गङ्गाधर तिलक अपनी पुस्तक "ओरियन" में ज्योतिष विद्या के प्रमाण से सिद्ध करते हैं कि विशेष २ ब्राह्मण भागों के बने १२००० बारह सहस्र वर्षों से भी अधिक व्यतीत हो चुके हैं । इतिहास जिन ग्रन्थों को अति प्राचीन बतलाता है । उनमें से एक भी ऐसा नहीं जिन के निर्माण काल में वेद ईश्वरोक्त न माना जाता हो । वेदों में जो सृष्टि सम्बन्ध दिया है, वह नवीन वैज्ञानिक अन्वेषणों से ठीक सिद्ध हो रहा है । सृष्टि के आरम्भ में ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता हम प्रथम ही सिद्ध कर चुके हैं । और अभी सिद्ध किया है कि वेद से प्राचीन किसी अन्य उपदेश का पता नहीं चलता और यह भी बतलाया है कि वेदको बड़े बड़े प्रामाणिक ग्रन्थ तथा पुरुष ईश्वरोक्त कह चुके और कह रहे हैं अतः यदि यह सिद्ध होजाय कि ईश्वरीय ज्ञानमें जिन जिन गुणोंकी आवश्यकता है वह सभी वेदों में पाए जाते हैं पुनः ऐसा कौन विचारशील पुरुष होगा जो वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार न करे ?

(ग) परमात्मा के सब दान उन सब प्राणियों के लिये होते हैं जो उन से लाभ उठा सकें । क्योंकि बुद्धि सब मनुष्यों में होती है इस लिये ईश्वरीय ज्ञान भी मनुष्यमात्र के लिये होना चाहिये । सब के लिये सामान्यतः लाभदायक होने के लिये यह आवश्यक है कि वह किसी देश विशेष की भाषा में न हो ताकि उस के समझने में सब को समान परिश्रम करना पड़े ।

कुरान अर्बी में है, बाइबल इबरानी में, ज़िन्द अवस्था पहलवी में ग्रन्थसाहब पञ्जाबी में । इन सब भाषाओं को देश भाषा कह सकते हैं परन्तु वेद इन भाषाओं में

3000 years E.C, was found a piece of Indian teak (Vedic India, by Zenaide A Ragozin, 3rd edtion. P. 305).

अर्थात् मुघेरनगर के खण्डहरों में जिसे कैनडिया वासी "उर" नगर कहते थे और जिसे "कईया" वा "उर बगय" नाम पुरुष ने (जो संयुक्त बेबिलोनिया का प्रथम राजा था) निर्म्मित किया था और जो ईसा के जन्म से कम से कम ३000 तीन सहस्र वर्ष पूर्व राज्य करता था, भारतीय सागुवान लकड़ी का एक टुकड़ा मिला था (वैदिक इण्डिया तृतीयावृत्ति पृष्ठ ३०५ महाशय जैनेद ए, रागोज़िन निर्म्मित)

से किसी में भी नहीं है। वह ईश्वरीयवाणी (वेद) यौगिक भाषा में है जो आदि सृष्टि में उत्पन्न हुवे मनुष्यमात्र की भाषा थी और जिस से अपभ्रंश हो कर आज इतनी भाषाएं जगत् में फैल गई हैं।

वेद की रचना अद्भुत है। इस में एक ऐतिहासिक प्रमाण भी है। धूर्तों ने भारतवर्ष के समग्र आर्ष साहित्य में अपने पाखण्ड मत को प्रामाणिक बनाने के लिये प्रक्षिप्त श्लोक, वाक्य जड़ दिये हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों से ले कर महाभारत तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं है जिस में बीसियों प्रक्षिप्त श्लोक न हों। महाभारत में तो असली श्लोकों की अपेक्षा कई गुण श्लोक प्रक्षिप्त हैं। परन्तु क्या कारण कि वेदों में एक अक्षर भी प्रक्षिप्त नहीं मिलता। वेदों के अक्षर और मात्राएं २०००० बीस सहस्र वर्ष पूर्व जितनी थीं उतनी ही अब हैं। यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि वेदों में प्रक्षिप्त श्लोक मिलाने से धूर्तों की कोई स्वार्थ सिद्धि नहीं हो सकती थी क्योंकि यदि धूर्त लोग धोखेसे यह सिद्ध कर सकते कि श्रुति में भी उनके मत की पुष्टि होती है तो उन का पाखण्ड मत बहुत चलता और उन की घृणित रीतियों का बहुत प्रचार होता। हम इस से तो यही परिणाम निकालते हैं कि वेद मन्त्रों की रचना इस प्रकार की है कि मनुष्य उस का पूर्णतःअनुकरण कर ही नहीं सकता। धूर्तों ने ऋषियों की लेख प्रणाली का अनुकरण तो इसप्रकार कर लिया है कि ग्रन्थ की भाषा मात्र देख कर यह बतलाना कठिन है कि कौन से श्लोक इन में प्रक्षिप्त हैं। परन्तु वेद मन्त्र बनाने का उन को साहस ही नहीं हुआ क्योंकि वे जानते थे कि ऐसा करने से उन की पोल तत्काल खुल जायगी। इस विषय में एक लौकिक दृष्टान्त की ओर ध्यान दीजिए। जर्मनी देश में यदि कोई नए प्रकार का लैम्प बने तो इंगलैंड के कारीगर वैसा ही लैम्प बना देते हैं, दोनों लैम्पों को देख कर कोई नहीं बतला सकता कि इन में असल कौनसी और नक़ल कौनसी है। परन्तु आज तक किसी ने कृत्रिम सूर्य्य, चन्द्र, तारागण बनाने का यत्न नहीं किया क्योंकि ऐसा यत्न करना अपने पागलपन का परिचय देना है। यह बात भी विचारणीय है कि यदि उत्तरोत्तर उन्नति (ईवोल्यूशन थियोरी) का सिद्धान्त ठीक माना जाय तो वेद की भाषा साधारण और अशुद्धियों से भरपूर होनी चाहिये। परन्तु हम यह देखते हैं कि वेद की भाषा अति ललित और प्रभावशाली है और यदि संसार में कोई पूर्ण व्याकरण है तो वह वेद का व्याकरण है अतः इस परीक्षा के अनुसार भी केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान ठहरते हैं।

(घ) ईश्वर का ज्ञान सब मनुष्यों के लाभ के लिये होता है। इस लिये उस

में किसी देश विशेष का इतिहास अथवा भूगोल नहीं हो सकता । बाइबल में यहूदियों का इतिहास अधिक है उस में पालिस्टाइन से सम्बन्ध रखने वाले बीसियों स्थानों का वर्णन है । ऐसी अवस्था में उस पुस्तक के विषय में यही कहा जा सकता है कि उस में एक जाति का इतिहास है और उस जाति के नेताओं ने अपने अनुयायियों के आत्मिक लाभ के लिये उसे लिखा है । इसी प्रकार कुरान अबस्थान के दृश्य वर्णन से भरपूर है, उस में मुहम्मद साहब के जीवन वृत्तान्त बहुत लिखे हैं, उन से जो भूलें हो गई उन्हें अच्छी सिद्ध करने का यत्न किया गया है, उस में स्वर्ग के जो दृश्य खींचे गये हैं वह केवल ऐसे पुरुषों की बुद्धि को मोहित कर सकते हैं जो ऐसे स्थान में उत्पन्न हुए हों जहां जल का अभाव सा हो, भूमि उपज शून्य हो और जिस में वृक्ष और वनस्पति लेश मात्र न हों । उस में बहुत सी ऐतिहासिक भ्रम-मूलक असम्भव कथाएं आती हैं । ग्रन्थसाहब में भी कई असम्भव कथाएं हैं यथा "भगत हेत मारचो हरनाखस नरसिंहरूप होइ देह धरचो । नामा कहै भगति वश केशव अजहूं बलि के द्वार खरो"* ज़िन्दावस्था के विषय में भी यही कहा जा सकता है । परन्तु वेदों में किसी पुरुष विशेष वा जाति विशेष का इतिहास नहीं है । उस में किसी पुरुष, जाति वा देश का नाम भी नहीं है ।

परन्तु योरोपीय विद्वानों ने भ्रम में पड़ कर और यह न जान कर कि वैदिक शब्दों के अर्थ केवल धातुज अर्थात् यौगिक होते हैं (नैगमरूढ़ि भवं हि सुसाधु, नाम च धातुजमाह निरुक्त व्याकरणे शकटस्य च तोकम्) वैदिक मन्त्रों का अर्थ पौराणिक कथाओं के आधार पर किया है । उन लोगों ने यह समझ लिया है कि भारतवर्ष का इतिहास भी और देशों के इतिहास की नांई है । परन्तु वास्तव बात यह नहीं है भारतवर्ष का इतिहास उत्तरोत्तर अवनति का इतिहास है जिसे अनेक योरोपीय विद्वानों को भी कई वार मानना पड़ा है । पुराणों के आधार पर वेदों का अर्थ करना वैसा ही हास्य जनक है जैसा कि नवीन फ़ारसी का कोष लेकर पहलवी भाषा के किसी पुस्तक का अर्थ लगाने का यत्न करना अथवा जैसा कि आज कल के अंग्रेज़ी कोष तथा व्याकरण के सहारे "चौसर" की किताबों का अर्थ समझने का उद्योग करना । जब फ़ारसी और अंग्रेज़ी जैसी नवीन भाषाओं की यह दशा है कि पांच वा छैसो वर्ष अथवा एक वा दो सहस्र वर्षों के बीच उन के शब्दार्थों में आश्चर्य्य जनक परिवर्त्तन हो

* नवल किशोर प्रेस लखनऊ का १८९३ का छपा हुआ श्री गुरुग्रन्थ साहब पृष्ठ ९६३ ।

जाता है तो कैसे माना जाय कि सहस्रों वर्षों के व्यतीत हो जाने पर संस्कृत भाषा के शब्दार्थों में कुछ परिवर्त्तन नहीं हुआ होगा ।

वेदों और वैदिक साहित्य के सत्यार्थ समझने के लिये अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु तथा निरुक्तादि के पढ़ने की आवश्यकता है । जिन मन्त्रों के अर्थों को न समझ कर इन विद्वानों ने वेद में से इतिहास निकालने का यत्न किया है उन में से दो चार को लेकर हम **परिशिष्ट में** बतलायेंगे कि अर्थ का अनर्थ किस प्रकार किया गया है । हम यह नहीं कह सकते कि योरोपीय विद्वानों ने दुष्ट भाव से वेदों के अर्थों का अनर्थ किया परन्तु यह अवश्य कहेंगे कि उन्हें वैदिक मन्त्रों का अर्थ करते हुए यह ध्यान अवश्य था कि इन वेद मन्त्रों का ऐसा अर्थ न निकले कि उन के माने वा प्रचार किये हुए सिद्धान्तों में किसी प्रकार का भेद पड़ जाय, जैसे कि "मोनियर विलियम्स्" कट्टर ईसाई थे उन का यत्न था कि "वेद छः सहस्र वर्ष से पूर्व का सिद्ध न हो" क्योंकि ईसाई धर्म्म में लिखा है कि सृष्टि को बने प्रायः छ सहस्र वर्ष व्यतीत हुए, उन को भय था कि "यदि वेद दश वा बीस सहस्र वर्ष पूर्व का भी सिद्ध हो जायगा तो उन का बाइबल एक साधारण पुस्तक ठैर जायगा।" उक्त योरोपीय विद्वानों में से कतिपय उत्तरोत्तर उन्नति विचार (इवोल्यूशन थियोरी) के पोषक थे अतः चाहते थे कि इस विचार की पुष्टि में प्राचीन ग्रन्थों से साक्षी मिले, और इसी लिये वे वैदिक मन्त्रों का अर्थ ऐसा करना चाहते थे जिस में उन से मनुष्यों की प्रारम्भिक सभ्यता सिद्ध हो । जहां कहीं उन्हें ऐसे वेद मन्त्र मिले जो वैज्ञानिक सत्ता के बोधक हैं उन्हों ने उन के उलटे अर्थ सोचने प्रारम्भ कर दिये, और तोड़ मरोड़ कर उन का अर्थ अपने मतलब का द्योतक लिख दिया । शोक की बात यह है कि भारतीय विद्वान् ऐसे विषयों के अन्वेषण में अपना समय लगाना नहीं चाहते, उन के भीतर से मानो अन्वेषण का भाव ही नष्ट हो गया है इस कारण जो कुछ योरोपीय विद्वानों ने लिखा सभ्य संसार ने उसी पर विश्वास कर लिया । भारत के सुपूतों को चाहिये था कि योरोपीय विद्वानों के वेद सम्बन्धी अमूलकता के लेखों का खण्डन करते । परन्तु यह खण्डन तब तक नहीं हो सकता जब तक अन्वेषण कर्त्ता वेदों के अर्थों के जानने की चेष्टा आर्ष प्रणाली अनुसार न करें । यही कारण है कि राजा राजेन्द्रलाल मित्र तथा महाशय रमेशचन्द्रदत्त आदि भारत वासियों ने वैदिक विषयों का अनुशीलन करते हुए भी योरोपीय विद्वानों का अनुकरण कर लिया। परन्तु महर्षि दयानन्द ने ऐसा नहीं किया क्योंकि उन्हों ने वैदिक

मन्त्रों का विचार उस विधि से किया जिस विधि से कि उन का विचार प्राचीन महर्षिगण किया करते थे अर्थात् विधिवत् ब्रह्मचर्य्य धारण कर तथा योगाभ्यास से आत्मा को पवित्र कर उन्हों ने वैदिक मन्त्रों का अर्थ किया जिस का प्रभाव यह हुआ कि सुशिक्षित श्रेणी के बहुत से लोग जो योरोपीय विद्वानों की सम्मति को मानते हुए वैदिक मन्त्रों को बच्चों की बलबलाहट समझ रहे थे वे उन्हें विज्ञानमय मानने लगे । आज कल भी बड़े बड़े विद्वान् महर्षि दयानन्द कृत वैदिक अर्थों की ओर आकर्षित हो रहे हैं और यदि वैदिक मतानुयायियों ने उक्त वेदार्थों का यथेष्ट प्रचार किया तो एक न एक दिन सारा संसार महर्षि कृत अर्थों के महत्त्व की ओर शिर झुकाएगा और महर्षि का उद्देश्य पूर्ण होगा। वह दिन जिस में शीघ्र आए इस लिये प्रत्येक वैदिक धर्मावलम्बी को पूर्ण पुरुषार्थ करना उचित है ।

(ङ) ईश्वर सर्वज्ञ है अतएव उस का कोई कार्य्य त्रुटि युक्त नहीं कहा जा सकता । संसार में हम यह देखते हैं कि जो मनुष्य अपनी इच्छाओं को बारम्बार बदलता रहता है और अपनी पूर्व आज्ञाओं के विरुद्ध नई आज्ञाएं प्रकाशित करता रहता है उस को मनुष्यों का कोई समूह भी अपना नेता बनाना नहीं चाहता क्योंकि उस की बुद्धि विशेष भ्रम युक्त अपरिपक्व एवं कल्याणकारी विषयों के समझने में अयोग्य मानी जाती है । जब कि बुद्धिमान् पुरुष भी दूरदर्शिता और विचार से काम लेते हुए यथासम्भव ऐसे नियम बनाते हैं कि जो चिरस्थाइ हों तो फिर ईश्वर के विषय में यह कहना अज्ञानता नहीं तो क्या है कि वह पहले एक आज्ञा प्रकाशित करता है और फिर उस के विरुद्ध दूसरी आज्ञा की घोषणा देता है और इसी प्रकार बारम्बार नई आज्ञाएं देता और पीछे से उन के विपरीत अन्यान्य आज्ञाओं को प्रचारित करना चाहता है ।

बाइबल में कई स्थानों पर ऐसा लेख आता है कि ईश्वर ने अपनी भूल के लिये पश्चात्ताप किया, कई स्थानों पर बाइबल का ईश्वर धमकियां देता है और उन्हें पूरा नहीं करता, दण्ड देने की घोषणा देता है परन्तु पीछे से क्षमा करदेता है । बाइबल के भिन्न २ भागों के विषय में कहा जाता है कि वे भिन्न भिन्न समयों पर आसमान से उतरे । क्या परमात्मा का पहला ज्ञान अपूर्ण था जो उसे नवीन ज्ञान प्रकाशित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई ?

इसी प्रकार मुसलमान मानते हैं कि पहले परमात्मा ने क्रमशः जबूर, तौरेत तथा अन्जील के ज्ञान प्रकाशित किये फिर उन सब को क्रमशः उत्तरोत्तर निषिद्ध

करता रहा । यहां पर भी वही प्रश्न किया जा सकता है कि क्या परमात्मा अज्ञानी है जो पहले कुछ कहता और पीछे से उसी के विरुद्ध कुछ अन्य कहने लगता है ?

वेद जैसे सृष्टि की आदि में थे वैसे ही अब भी हैं, उन में एक मात्रा का भी भेद नहीं हुआ है । जैसे परमात्मा अनादि है वैसे ही उस का ज्ञान (वेद) भी अनादि है, उन के किसी भी सिद्धान्त के परिवर्तन की आवश्यकता परमात्मा को कभी भी प्रतीत नहीं हुई अतः वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है ।

(च) प्राकृतिक संसार का कर्त्ता परमेश्वर है इस में किसी भी आस्तिक को सन्देह नहीं है अतः उस के सृष्टि नियम जो संसार में चल रहे हैं उन के विपरीत वह ज्ञान नहीं हो सकता जिसे उस ने मनुष्यों के कल्याणार्थ प्रकाशित किया है ।

परन्तु बाइबल में सृष्टि नियम विरुद्ध लिखा है कि इसूमसीह मरियम कुमारी के पेट से पैदा हुए, उन्हों ने मुर्दों को जीवित किया, अन्धों को बिना किसी औषधि के आंखें दी इत्यादि ।

इसी प्रकार कुरान में लिखा है कि सूर्य्य कीचड़ के चश्मे (सरोवर) में डूबता था, पहाड़ बादलों की तरह चलते थे, मूसा ने पत्थर पर अपना असा (दण्ड) मारा और उस पत्थर से बारह चश्मे (सरोवर) बह निकले इत्यादि ।

पुराणों में लिखा है अगस्तमुनि ने समुद्र को पी लिया, एक दैत्य सारी पृथिवी को चटाई की तरह लपेट उसे सिरान्हें रख सो गया इत्यादि ।

ग्रन्थ साहब में भी पुराणों की तरह अनेक कथाएं लिखी हैं ।

परन्तु वेदों में सृष्टि नियम विरुद्ध एक भी बात नहीं है ।

पश्चिमीय विद्वान् जो यह कहते हैं कि वेदों में अनेक भ्रम मूलक कथाएं हैं वे सर्वथा स्वयम् भ्रम में हैं, उन्हों ने वेदों के आशयों को नहीं समझा । जिन वैदिक मन्त्रों से पश्चिमीय विद्वान् भ्रम मूलक कथाएं निकालते हैं वे वेदमन्त्र वास्तव में विशुद्ध अलङ्कारों का वर्णन करते हैं जैसा कि हम उदाहरण स्वरूप दो चार वेद-मन्त्रों के अर्थ परिशिष्ट में प्रकाशित कर बतलाएंगे ।

(छ) "जब आत्मा मन, और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकारादि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय, जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है, उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय शङ्का और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है, वह जीवा-

त्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है " इस से सिद्ध होता है कि परमात्मा की शिक्षा, पवित्र होती है। परन्तु इस के विपरीत बाइबल, कुरान तथा पुराणादि में कई अपवित्र बातें पाई जाती हैं जिस कारण इन में से कोई भी ईश्वरीय ज्ञान नहीं कहला सकता। परन्तु वेद की शिक्षा अति पवित्र है उस की पवित्र शिक्षा का नमूना कतिपय वेद मन्त्रों के द्वारा हम **परिशिष्ट** में प्रकट करेंगे जिन के अवलोकन से पता लगेगा कि जैसी उच्च शिक्षा वेद की है वैसी संसार भर के किसी पुस्तक की नहीं है।

(ज) मनुष्यों के कल्याण के लिये परमात्मा ने जिस ज्ञान का उपदेश किया हो उसे सब विद्याओं का भण्डार होना आवश्यक है। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि सब विद्याएं उस में विस्तृत रूप से बतलाई गई हों, सब विद्याओं के मौलिक सिद्धान्त यदि उस में हैं तो वह मनुष्यों के कल्याण के लिये पर्याप्त है। जिस प्रकार कि भौतिक सूर्य्य मण्डल प्रत्येक प्रकार के प्रकाश का कोष है उसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान भी विद्या रूपी प्रकाश का मूल है। चन्द्रमा यदि प्रकाशित है तो सूर्य्य के किरणों से, वायु यदि बहता है तो सूर्य्य के ताप से, पृथिवी मात्र पर जहां कहीं अग्नि है वह सब का सब वायु के सहारे जलता है और वायु का प्रवाह सूर्य्याधीन है अतः सूर्य्य ही सब प्रकार के भौतिक प्रकाशों का मूल है। जब कि परमात्मा की भौतिक सृष्टि में देखते हैं कि सब प्रकार के भौतिक प्रकाशों का भण्डार भौतिक सूर्य्य प्रकाश दे रहा है तो यह कैसे माना जा सकता है कि मानसिक और आत्मिक जगत में ज्ञान रूपी प्रकाश का प्रदान करने वाला सूर्य्य सर्व विद्याओं से भरपूर न होगा? अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ईश्वरीय ज्ञान में सब विद्याएं विस्तृत रूप से होनी चाहिएं अथवा उस में सब विद्याओं का मौलिक सिद्धान्त मात्र होना चाहिए? जब कि ईश्वर सर्वज्ञ है तो क्या वह सब विद्याओं को विस्तृत रूप से वर्णित नहीं कर सकता? इस के उत्तर के लिये भी सृष्टि क्रम को देखिये। सूर्य्य हमें केवल प्रकाश देता है जिस की सहायता से आंख देखती हैं। यदि आंखें देखना न चाहें अथवा अन्यथा देखें तो सूर्य्य सब वस्तुओं का यथार्थ रूप नहीं दिखा सकता। हां यदि नेत्र देखना चाहें तो सूर्य्य उन्हें सब कुछ दिखा सकता है। इस के अतिरिक्त परमात्मा ने संसार में जितने पदार्थों की रचना की है वह एक न एक कार्य के लिये है, कोई भी वस्तु निरर्थक नहीं बनाई गई। अतः नेत्रों का काम भी यदि सूर्य्य ही करदे तो चक्षु जिन की सूक्ष्म रचना परमात्मा की महानता की घोषणा दे रही हैं

निरर्थक ही सिद्ध हो जांय । जिस प्रकार भौतिक संसार में चक्षु हैं उसी प्रकार मानसिक और आत्मिक जगत में बुद्धि है । यदि वेद में सब विद्याएं पूर्ण विस्तार सहित वर्णित होवें तो बुद्धि निरर्थक सिद्ध हो अतः परमात्मा ने वेदों में सर्व विद्या सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्तों को बतलाया ताकि मनुष्य अपनी बुद्धि को दौड़ा कर विद्याओं का विस्तार कर सकें । हां यह बात कभी नहीं हो सकती कि विद्यार्थी अपनी बुद्धि के बल से बिना किसी शिक्षक की सहायता के विद्या सम्बन्धी मौलिक सिद्धान्तों को भी स्वयम् जान ले ।

बाइबल और कुरान में विद्याओं के मूल सिद्धान्तों की विद्यमानता की बात तो दूर रही उन में अनेक बातें ऐसी भरी हुई हैं जो विद्या विज्ञान के सर्वथा विरुद्ध हैं । इस सम्बन्ध में कई बातें तो पहले भी लिखी जा चुकी हैं अन्यान्य कतिपय और भी सुनिये । बाइबल और कुरान में लिखा है कि भूमि चौड़ी है, फरिश्ते आसमान पर रहते हैं, सृष्टि को बने केवल छःसहस्र वर्ष हुए इत्यादि इत्यादि जिन्हें पढ़ कर कोई विद्वान् यह स्वीकार नहीं कर सकता कि उक्त पुस्तकें परमात्मा की अथवा किन्हीं विद्वानों की वा किसी विद्वान् की भी बनाई हुई हैं । बाइबल के विज्ञान विरुद्ध होने का एक दृढ़ प्रमाण यह भी है कि युरोप में ईसाई पुरोहितों तथा आचार्य्यों की ओर से वैज्ञानिकों पर सदा अत्याचार होते रहे हैं । प्रसिद्ध विद्वान् गलेलियो इस कारण बन्दीगृह में डाला गया कि उस ने बाइबल की शिक्षा के विरुद्ध इस सत्-सिद्धान्त का प्रचार किया कि भूमि सूर्य के चतुर्दिक् घूमती है । देवी हियाफिया, ईसाई, पादरी सिरिल की आज्ञा से नग्न की गई और बीच बाज़ार में जान से मारी गई । उस देवी का अपराध (जिसे ईसाई अपराध बतलाते थे) केवल यह था कि वह रेखागणित की विद्या लोगों को पढ़ाया करती थी । पादरी कहते थे कि रेखागणित की विद्या असत्य है क्योंकि बाइबल में इस विषय में कुछ नहीं लिखा । कोलम्बस जब अमेरिका का पता लगाने के लिये एक जहाज़ ले जाना चाहता था तब उस ने इस कार्य में पुर्तगाल के महाराज की सहायता लेनी चाही । महाराज ने कोलम्बस की प्रार्थना पर विचार करने के लिये पादड़ियों की एक सभा एकत्रित की । पादड़ियों ने वादानुवाद के पश्चात निश्चित किया कि भूमि के किसी अन्य महाखण्ड के विषय में बाइबल में कुछ नहीं लिखा है अतः कोलम्बस बाइबल के सिद्धान्त विरुद्ध व्यर्थ श्रम करना चाहता है अतएव उसे सहायता नहीं मिलनी चाहिये । इस

निष्पत्ति (फ़ैसले) के कारण बेचारे कोलम्बस को पुर्तगाल महाराज के यहां से निराश लौटना पड़ा ।

परन्तु वेदों में विज्ञान विरुद्ध एक भी बात नहीं है प्रत्युत ये महोच्च गम्भीर शिक्षाओं से भरे हुए हैं । इस विषय का निर्भ्रान्त और पूर्ण निश्चय तो तब होता है जब कि कोई बाल्यावस्था से ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण कर अपने आत्मा को साधन सम्पन्न बनाए और वेदाङ्गों तथा उपाङ्गों को अध्ययन कर पुनः वेदार्थों पर विचार करे, तथापि नमूने की तरह कतिपय वेद मन्त्रों के भावार्थ हम यहां प्रस्तुत करते हैं जिन से वेदों के कुछ महत्व प्रकट होंगे:—

आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरम्पुरः । पितरञ्च प्रयन्त्स्वः । यजुर्वेद । अध्याय ३ । मन्त्र ६

यह भूगोल जल के सहित सूर्य्य के चारों ओर घूमता जाता है ।

महर्षि यास्क अपने ग्रन्थ निरुक्त में लिखते हैं "गौरिति पृथिव्या नामधेयम् । यद् दूरं गता भवति" अर्थात् पृथिवी का नाम "गौ" इस कारण है कि यह दूर दूर तक चलती रहती है ।

या गौर्वर्त्तनिं पर्य्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः । सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते । ऋग्वेद अ० ८ । अ० २ । व० १० । मं० १

पृथिवी अपने व्यास पर घूमती हुई सूर्य्य की परिक्रमा उस आकाश मार्ग से कर रही है जिस परमात्मा ने उस के घूमने के लिये निर्दिष्ट किया है। और अन्यान्य लोक भी नियमित गति से घूम रहे हैं । यह पृथिवी अनेक प्रकार के रस फलादि से प्राणियों को तृप्त कर रही है । इत्यादि ।

यदा ते हर्य्यता हरी वावृधाते दिवे दिवे । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे । ऋग्वेद अ० ६ । अ० १ । व० ६ । मं ३

अर्थात् सब लोकों के साथ सूर्य्य का आकर्षण है और सूर्य्यादि लोकों के साथ ईश्वर का आकर्षण है इसी कारण सब लोक अपनी अपनी कक्षा में चलते और इधर उधर विचलित नहीं होते हैं ।

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ यजुर्वेद अ० ३३ । मं० ४३ ॥

सविता अर्थात् सूर्य्य वर्षादि का कर्त्ता प्रकाश स्वरूप तेजोमय रमणीय स्वरूप के साथ वर्तमान सब प्राणी अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्तिमान् द्रव्यों को दिखाता हुआ सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सहवर्तमान अपनी परिधि में घूमता रहता है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्य्येणोत्तभिता द्यौः। ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः॥ अथर्व कां० १४। अनु० १। मं० १॥

यह पृथिवी आकाश में परमात्मा की शक्ति से सुर्य्याकर्षण द्वारा धारित है। सब प्रकाशों का मूल सुर्य्य है त्रसरेणु भी सूर्य्य की शक्ति से धारित है। और चन्द्रमा सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है।

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः। किं ७ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्॥ सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्। यजुर्वेद अ० २३। मं०९,१०

यहां चार प्रश्न हैं और क्रमशः उन के चार उत्तर दिये गये हैं।

चार प्रश्न।

(१) कौन एकाकी अर्थात् अकेला विचरता और अपने प्रकाश से प्रकाश वाला है? (२) कौन दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित होता है? (३) शीत का औषध क्या है? (४) कौन बड़ा क्षेत्र अर्थात् स्थूल पदार्थ रखने का स्थान है?

चार उत्तर।

(१) इस संसार में सुर्य्य एकाकी अर्थात् अकेला विचरता और अपनी कील पर घूमता है तथा प्रकाश रूप होकर सब लोकों का प्रकाश करने वाला है (२) उसी सूर्य्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है। (३) शीत का औषध अग्नि है। (४) यह पृथिवी साकार चीज़ों के रखने का स्थान तथा सब बीज बोने का बड़ा खेत है।

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे। यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्॥ ऋग्वेद अ० १। अ० ८। व०८ मं०५।

अर्थात् जिस आकाश और समुद्र में बिना आलम्बन से कोई भी नहीं ठहर सकता उन में किसी प्रकार का आलम्बन सिवाय नौका और विमान के नहीं मिल

सकता इस लिये अन्तरिक्ष और समुद्र में चलने योग्य यानों को अपने काय्यों की सिद्धि के लिये रचलो ।

(ञ) अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि सृष्टि की आदि में परमात्मा ने किस प्रकार मनुष्यों को वेदों का ज्ञान प्रदान किया । परमात्मा साकार तो है नहीं कि उस ने पुस्तक लिख कर छपवादी हो अथवा सुनादी हो तो फिर वेदों का ज्ञान मनुष्यों को कैसे हुआ ?

१—शतपथ ब्राह्मण काण्ड १४, अध्याय ५, ब्रा० ४, कं० १०में लिखा है:—

एवं वा अरेस्य महतो भूतस्य निःश्वासितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः शामवेदो ऽथर्वांगिरसः ।

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य सहजतया बिना श्रम के श्वास अपने शरीर से निकालता है उसी प्रकार जो आकाशादि से भी बड़ा सर्वव्यापक परमेश्वर है उस ने सहजतया ऋक्, यजु, साम और अथर्व वेदों को उत्पन्न किया है ।

२—शतपथ ब्राह्मण काण्ड ११ अध्याय ५ में स्पष्ट लिखा है:—

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायंताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः।

अर्थात् परमात्मा ने तीन वेदों की उत्पत्ति इस प्रकार की कि अग्नि ऋषि के हृदय में ऋग्वेद का, वायु ऋषि के हृदय में यजुर्वेद का और सूर्य ऋषि के हृदय में सामवेद का प्रकाश किया और इसी प्रकार अन्य प्रमाणों से सिद्ध होता है कि अङ्गिरा ऋषि के हृदय में अथर्ववेद का प्रकाश किया ।

यदि कोई कहे कि परमात्मा ने वेदों के शब्द अर्थ और उन के सम्बन्ध का का ज्ञान एकाएक चार मनुष्यों के हृदयों में कैसे डाला जब कि इस प्रकार की कोई अन्य घटना इस समय दृष्टिगोचर नहीं होती तो इस का उत्तर यह है कि आज कल भी एक जीवात्मा दूसरे जीवात्मा पर अपना प्रभाव एकाएक डालता है । जिस के अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर हुआ करते हैं ।

वह घटना आज कल मैज़मरेज़म के नाम से प्रसिद्ध है जिस को प्राचीन समय में योगावेश का एक साधारण भाग माना करते थे । मैज़मरेज़म की क्रिया द्वारा, एक दृढ़ इच्छा का पुरुष एक निर्बल इच्छा वाले मनुष्य के हृदय में अपना जो ज्ञान चाहे एकाएक डाल सकता है । जब कि मैज़मरेज़म करने वाला पुरुष उस मनुष्य के हृदय में जिस ने अंग्रेज़ी कभी नहीं पढ़ी अंग्रेज़ी पुस्तक का ज्ञान डाल

सकता है और उस के मुख से उन शब्दों का उच्चारण करवा सकता है जिन्हें उस ने पहले कभी नहीं सुना तो फिर क्या सर्व-शक्तिमान् परमात्मा के लिये यह असम्भव है कि वह पवित्र चार जीवात्माओं पर ऐसा प्रभाव डाले कि वह वेदों के शब्द अर्थ और उन के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त करते हुए वैदिक शब्दों का उच्चारण कर सकें ? जिस प्रकार मैज़मरेज़म करने वाले के सबजेक्ट (जिस पर मैजमरेज़म किया जाता है) की इच्छा इतनी वशीभूत और पराधीन हो जाती है कि मैजम-रेज़म करने वाला जैसा चाहता है वैसा ही उस से बुलवाता है उसी प्रकार परमात्मा ने उक्त चार ऋषियों के द्वारा वेदों को प्रकाशित किया । " परमात्मा सर्व शक्ति-मान् है, मुख प्राणादि साधनों के बिना भी वह मुख प्राणादि का काम अपने अनन्त सामर्थ्य से कर सकता है जिस प्रकार निराकार रहते हुए भी सारी सृष्टि की रचना कर लेता है । मन में मुखादि अवयव नहीं हैं तथापि उस के भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण मानस व्यापार में होता है वैसे ही परमेश्वर में भी जानना चाहिये । उस ने उक्त चार ऋषियों के आत्माओं में व्यापक रहने के कारण उन के आत्माओं में अपने अनन्त सामर्थ्य से वेदों को प्रकाशित कर दिया । " उक्त चार ऋषियों को परमात्मा के उपदेश के पूर्व वेदों का कुछ भी ज्ञान न था अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त ऋषियों ने वेदों को रचा ।

(ञ) वेदों की संख्या के चार होने में भी एक वैज्ञानिक नियम काम कर रहा है । संसार भर की जितनी घटनाएं हैं इन का परिगणन तीन काण्डों में आ सकता है अर्थात् ज्ञान काण्ड, कर्म्म काण्ड और उपासना काण्ड । ऋग्वेद ज्ञान-काण्ड का भण्डार है, यजुर्वेद उस ज्ञान को कर्म्म में परिणत करने की रीति बत-लाता है और सामवेद में उपासना विषयक ज्ञान है । अथर्व वेद में उक्त तीनों प्रकार के विषयों का सम्मिलित प्रयोग बतलाया गया है और इसी कारण उसे विज्ञान काण्ड कहते हैं ।

उपरोक्त युक्तियों से हम ने स्पष्टतः बतला दिया है कि सृष्टि की आदि में ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है और वह ईश्वरीय ज्ञान ऋक्, यजु, साम और अथर्व हैं ।

---

(२) परिशिष्ट

वेदों की पवित्र तथा उच्च शिक्षा का नमूना ।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋग्वेद अ० १ । अ० २ । व । ७ । मं० ५ ॥

जैसे प्राणी सूर्य्य के प्रकाश में शुद्ध नेत्रों से मूर्तिमान् पदार्थों को देखते हैं वैसे ही विद्वान् लोग निर्मल विज्ञान से विद्या वा श्रेष्ठ विचार युक्त अपने शुद्धात्मा में जगदीश्वर को सब आनन्दों से युक्त और प्राप्त होने योग्य मोक्षपद को देखकर प्राप्त होते हैं ।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी । यजुर्वेद अ० ८ । मन्त्र ३६ ॥

जिस परब्रह्म से दूसरा कोई भी उत्तम पदार्थ नहीं है जो सब जगह व्यापक हो रहा है वही सब जगत् का पालन कर्ता और अध्यक्ष है उसी ने अग्नि सूर्य्य और बिजुली इन तीन ज्योतियों को प्रजा के प्रकाश के लिये रचा है वही षोडश-कला युक्त जगत् का स्वामी है ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषानो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ऋग्वेद अ० १ । अ० ६ । व० १५ । मं० ५ ॥

जो सब जगत् का बनाने वाला है जो चेतन और जड़ जगत् का राजा और पालन कर्त्ता है जो मनुष्यों को बुद्धि और आनन्द से तृप्त करने वाला है उस की हम लोग अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं सब सुखों से पुष्ट करने वाले जिस प्रकार आप हमारे सब सुखों के बढ़ाने वाले हैं वैसे ही रक्षा भी करें ।

सनो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ यजु० अ० ३२ । मन्त्र १० ॥

जिस जीव और प्रकृति से विलक्षण आधार रूप जगदीश्वर में मोक्ष सुख को प्राप्त हुए विद्वान् लोग सर्वत्र अपनी इच्छा पूर्वक विचरते हैं जो सब लोक लोका-न्तरों और जन्म स्थान नामों को जानता है वह परमात्मा हमारे भाई के तुल्य मान्य

सहायक और सब जगत् का उत्पन्न करने हारा है तथा वही सब पदार्थों और कर्म फलों का विधान करने वाला है ।

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपास्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि संविवेश ॥ यजुर्वेद अ० ३२ । मंत्र ११॥

जो परमेश्वर आकाशादि सब भूतों में तथा सूर्य्यादि सब लोकों में व्याप्त हो रहा है और जो पूर्वादि दिशाओं तथा आग्नेयादि उपदिशाओं में भी निरन्तर भरपूर हो रहा है जिस की व्यापकता से एक अणु भी रिक्त (खाली) नहीं है जो अपने भी सामर्थ्य का आत्मा है और जो कल्पादि में सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला है उस आनन्द स्वरूप परमेश्वर को जो जीवात्मा अपने सामर्थ्य मन से यथावत् जानता है वही उस को प्राप्त होके मोक्ष सुख को भोगता है ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ यजु० अ० ३१ । मं० १८

मैं इस महान् व्यापक स्वप्रकाश स्वरूप अज्ञानान्धकार रहित परमात्मा को जानता हूं । उसी को जान के दुखदाई मरण को मनुष्य उल्लंघन कर जाता है । मोक्ष की प्राप्ति के लिये सिवाय उस परमात्मा के ज्ञान के अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः॥ यजुर्वेद अ० ४० । मं० ५ ॥

परमात्मा सम्पूर्ण लोकों को चला रहा है परन्तु आप निष्कम्प है । वह दूर से दूर वर्तमान और अत्यन्त निकट भी है वह सब जगत् के भीतर व्यापक हो रहा है और सब जगत् के बाहर भी व्यापक है ।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजुर्वेद अ० ४० । मं ८ ॥

वह परमात्मा सब में व्यापक शीघ्रकारी सर्व शक्तिमान्, स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित, छिद्र रहित और अच्छेद्य, नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित, अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र, जो पापयुक्त पापकारी अथवा पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता' जो सर्वज्ञ, सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला, दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला, अनादि

स्वरूप जिस की संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश नहीं होता, जो माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि मरण को प्राप्त नहीं होता वह परमात्मा, सनातन अनादि स्वरूप अपने २ स्वरूप से उत्पत्ति विनाश रहित जीव रूप प्रजाओं के लिये यथावत् अर्थों ज्ञानों का उपदेश वेद द्वारा करता है ।

(३) परिशिष्ट

यहां निदर्शन रूप कतिपय ऐसे वेद मन्त्रों के आशय प्रकाशित किये जाते हैं जिन के वास्तविक अर्थ न समझ कर यूरोपीय विद्वानों ने ऐतिहासिक अर्थ किये हैं ।

प्रनू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते । वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ऋग्वेद । मण्डल । १ । सूक्त । ५९ । मन्त्र ६ ॥

इस का अर्थ प्रोफ़ेसर मैक्समूलर सम्पादित सैक्रेडबुक्स आफ दि ईस्टसेरीज़ के "वैदिक हिम्स" नामक ग्रन्थ भाग २ के पृष्ठ ५९ में इस प्रकार लिखा हुआ है:—

अब मुझे उस बैल की महानता की घोषणा करने दो जिसे शत्रुओं का नाशक समझ पुरुवंशी पूजते हैं । अग्निवैश्वानर ने दस्यु को मार कर वायु मण्डल को कंपा दिया और शम्बर (राक्षस) को काट डाला *

योरोपीय विद्वानों ने इस वेद मन्त्र में आए हुए "वृषभस्य" शब्द का अर्थ "सर्वोत्कृष्टस्य" अर्थात् "सब से उत्तम" न समझ कर इस का अर्थ "बैल" कर दिया । इसी प्रकार "पूर्व का अर्थ जैसा कि निघण्टु–कर्त्ता यास्क–महर्षि ने "पूर्व इति मनुष्य नाम, निघं० २ । ३" मनुष्य किया है वैसा न समझ कर "पुरुवंशी" किया । और वैसे ही "शम्बरम्" का अर्थ यास्काचार्य्य ने "शम्बरमिति मेघ नाम, निघं० १ । १०" जो मेघ किया है वह न जान कर उस का अर्थ "शम्बर" नाम कल्पित राक्षस कर दिया है । और इस प्रकार इस वेद मन्त्र से एक इतिहास निका-

---

* Let me now proclaim the greatness of the bull whom the Purus worship as the destroyer of enemies. Agni Vaisvanara, having slain the Dasyu, shook the (aerial) arena and cut down Sambara. (Sacred Books of the East, Vedic Hymns, Part 2. P. 49.)

लने का यत्न किया है । परन्तु वास्तव में यह वेद मन्त्र परमात्मा की महिमा का द्योतक है यथाः—

उक्त वेद मन्त्र का सत्यार्थ

जिस परमेश्वर को विद्वान् मनुष्य अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं वही स्वप्रकाश स्वरूप परमात्मा मेघों के नाश कर्त्ता सूर्य्य की तरह सम्पूर्ण पदार्थों को दिखाते हैं अर्थात् सब का ज्ञान प्रदान करते हैं। जिस प्रकार सूर्य्य डाकू रूप मेघों को मारता, कम्पायमान करता और उन्हें छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार परमात्मा दुष्टों को दण्ड देते हुए अविद्यान्धकार का नाश करते हैं। जिस परमात्मा के बीच सर्व दिशाएं भी व्याप्य हैं उस सर्व-व्यापक सर्वोत्कृष्ट परमात्मा की महिमा को हम भली भांति शीघ्र वर्णन करें।

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उद्रम् ॥ ऋग्वेद । मण्डल ४ । सूक्त १५ । मन्त्र ७

उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आददे । ऋ० । मण्ड० ४ । सू० १५ मं० ८

एष वां देवावश्विना कुमारः । साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः । ऋ० । मण्ड० ४ । सू० १५ मं० ९

ऋग्वेद मण्डल ४, सूक्त १५ के इन ७, ८, ९ संख्या वाले तीन मन्त्रों का अर्थ, प्रोफ़ेसर मैक्समूलर सम्पादित "सेक्रेडबुक्स आफ् दि ईस्ट" सिरीज़ के "वैदिक हिम्स" नामक ग्रन्थ भाग २ के पृष्ठ ३६० में इस प्रकार लिखा हुआ है;—

जब सहदेव के पुत्र उस राजकुमार ने दो लाल घोड़ों के साथ (दो लाल घोड़े देने की इच्छा से) मेरा स्मरण किया (तब) मैं उस पुरुष की तरह खड़ा हो गया जो बुलाया गया हो (अर्थात् जिसे आने के लिये किसी ने पुकारा हो *

और मैंने सहदेव के पुत्र उस राजकुमार से, उन दो पूजनीय लाल घोड़ों को जिन्हें उस ने मुझे दिया, अति शीघ्र ग्रहण कर लिया †

---

* When Sahdeva's son, the prince, thought of me with two bay horse, I rose up like one who is called. (Sacred Books of the East, Vedic Hymns, Part 2, P. 360.)

† And immediately I accepted from Sahdeva's son, the prince. those adorable two bay horses which he offered me. (Sacred Books of the East. Vedic Hymns, Part 2. P-360)

हे अश्विन देवताओ ! सहदेव का पुत्र यह सोमक नामक राजकुमार, आप के लिये, दीर्घजीवी हो *

योरोपीय विद्वानों ने इन वेद मंत्रों में आये हुए साहदेव्याः शब्द का अर्थ "ये देवैःसह वर्त्तन्ते" अर्थात् "जो विद्वानों के साथ रहने वाले हैं" न जान कर इस शब्द का "सहदेव नामक राजा विशेष का पुत्र" अर्थ ग्रहण किया है । "अश्विनौ शब्द का अर्थ "सर्व विद्या-व्यापिनौ" अर्थात् सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त अर्थात् "सब विद्याओं के जानने वाले" ऐसा न कर के इस शब्द का "अश्विन" नामक "कल्पित देवता गण" अर्थ किया है । "सोमक" शब्द का अर्थ है सोम इव शीतल स्वभावः" अर्थात् चंद्रमा के सदृश शीतल स्वभाववाला परन्तु इस का अर्थ योरोपीय विद्वानों ने "कल्पित राजा–सहदेव के कल्पित पुत्र सोमक नामक राजकुमार" किया है । इसी कारण इन वेद मन्त्रों के अर्थ योरोपीय विद्वान् न समझ सके और इन से इतिहास निकालने लगे ।

उक्त वेद मन्त्रों के सत्यार्थ ।

इन वेद मन्त्रों के द्वारा परमात्मा ने अध्यापक तथा उपदेष्टा और उन के ब्रह्मचारियों को उन के कर्तव्यों का उपदेश दिया है जो कि इस प्रकार है—

ब्रह्मचारी अपने अध्यापक से निवेदन करे "हे अध्यापक ! मैं विद्वज्जनों का साथी कुमार (ब्रह्मचारी) हूं मैं प्रशंसित रीति से जिन बातों को न जानता होऊं उन का अच्छे प्रकार उत्तम बोध दीजिये ताकि (द्रुत गामी) घोड़ों की सहायता से शीघ्र चलने वाले पुरुष की तरह पठन और अभ्यास की सहायता से मैं शीघ्र विद्या को पार हो जाऊं ।

(इस निवेदन के सुनने पर)

विद्या दाता तथा अविद्या के हरण करने वाले प्रयत्नवान् अध्यापकोपदेशक को उचित है कि वे विद्वानों के सहवर्त्ती कुमार (ब्रह्मचारी) से विद्याध्ययन की प्रतिज्ञा ग्रहण करें और ब्रह्मचारी उन से शीघ्र २ विद्या ग्रहण करने लगे ।

(तब)

हे विद्वानो ! सब विद्याओं में व्याप्त आप अध्यापकोपदेशक को उचित है कि

---

* May this prince Somaka, Sahdeva's son, live. long, for your sake, O divine Asvins. (Sacred Books of the East. Vedic Hymns, Part, 2. P. 360)

उन विद्वानों के सहवर्त्ती चन्द्रमा सदृश शीतल स्वभाव वाले कुमार ब्रह्मचारी के लिये ऐसा यत्न करें कि वह बहुकाल पर्यन्त जीने वाला होवे ।

मये में बन्ध्वेसे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्रसः ॥ ऋग्वेद मण्डल ५ । सूक्त ५९ । मंत्र १६ ।

इस का अर्थ प्रोफ़ेसर मैक्समूलर सम्पादित सैक्रेड बुक्स आफ़ दी ईस्ट सरीज़ के वैदिक हिम्स नामक ग्रन्थ भाग १ के पृष्ठ ३१३ में इस प्रकार लिखा हुआ है:–

उन बुद्धिमान्, स्वामी, मरुतों ने, जब कि उन के सम्बन्धियों के विषय में अन्वेषण. खोज पूछ पाछ हुई तो मुझ से गाय के विषय में कहा और कहा कि पृश्नी उन की माता है और बलवान रुद्र उन के पिता हैं *

योरोपीय विद्वानों ने इस वेद मंत्र में आए हुए "बन्ध्वेषे" शब्द का अर्थ जो "inquiry for their kindred अर्थात् उन के सम्बन्ध (रिश्तदारी) के विषय म पूछ पाछ" किया है वह ठीक नहीं । इस का अर्थ है "बन्धूनामिच्छायै" अर्थात् "बन्धुओं की इच्छा के लिये" अर्थात् ऐसी इच्छा के लिये शुभ कामना के लिये, जो मनुष्यों को अपना बन्धु अर्थात् प्रेमी बनाने के लिये है । यह वास्तविक अर्थ न जानने से ही योरोपियों ने इस वेद मंत्र में आए हुए अन्तरिक्ष वाचक "पृश्नी" शब्द से स्त्री विशेष और दुष्टों को भय-प्रद वाचक "रुद्र" शब्द से पृश्नी के पति रुद्र नामक पुरुष विशेष का अर्थ ग्रहण कर लिया है ।

उक्त वेद मंत्र का सत्यार्थ ।

परमात्मा उपदेश करते हैं:—

" जो विद्वज्जन बन्धुओं की इच्छा के लिये (मनुष्यों को अपना बन्धु, स्नेही, प्रेमी, अपने समान बनाने के लिये) मेरी वाणी (वेद) को उत्तम प्रकार कहते अर्थात् वेद का भली भांति उपदेश करते हैं, जो पृश्नि अर्थात् अन्तरिक्ष विषय को बतलाते हैं तथा जो माता के विषय में उपदेश करते और शक्ति-शाली पिता के

---

* They, the wise Maruts, the lords, who, when there was inquiry for their kindred, told me of the cow, they told me of Prisni as their mother, and of the strong Rudra as their. father (Sacred Books of the East, Vedic Hymns, Part 1. P. 313)

विषय में तथा दुष्टों का दण्ड देने वाले न्यायाधीश रुद्र के विषय में अथवा जो प्यारी माता के समान स्नेही, शक्ति-शाली पिता के समान रक्षक तथा न्यायाधीश रुद्र के समान दुष्टों को दण्ड देने वाले परमात्मा के विषय में उपदेश करते हैं वे सत्कार के योग्य हैं ! ''

-॥ दूसरा भाग ॥-

* ब्राह्मण ग्रन्थों के समय का इतिहास *

प्रथम परिच्छेद

ब्राह्मण ग्रन्थों का समय-उस समय का साहित्य।

आज से प्रायः दो सहस्र वर्ष पूर्व योरोप महादेश का तीन चौथाई भाग प्रायः जाङ्गलिक था। यूनान से रोमादि देशों तथा योरोप के अन्यान्य भागों में क्रमशः दो सहस्र वर्षों के भीतर ही विद्या (विशेष कर प्राकृतिक विद्या) इतनी फैल गई कि लोग आज कल योरोप को सर्व शिरोमणि मानने लग गए हैं। अतः अनुमान करना चाहिये कि वर्तमान सृष्टि की आदि में (जिसका समय एक अर्ब छियानवे करोड़ वर्षों से भी अधिक व्यतीत हो चुका है) जब कि वेदों की अनुपम शिक्षा को अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा, नाम ऋषियों ने और उन के बाद ब्रह्मादि ऋषियों ने प्रचरित किया होगा तो थोड़े ही दिनों में कितनी उन्नति हुई होगी ! सैकड़ों मन्त्र द्रष्टा ऋषि और ऋषिपत्नियां वा ऋषिकन्याएं विशेष २ मन्त्रों के भावों के सुप्रचार के कारण ही जब कि उन २ मन्त्रों के ऋषि (प्रचारक) कहलाए तब कोई भी शङ्का नहीं कर सकता कि वर्तमान सृष्टि के आरम्भ में वेदों के प्रकाशित होने के पश्चात् वैदिक धर्म का सुप्रचार न हुआ। वैदिक धर्म की थोड़ी सी शिक्षा ग्रहण करने से जब कि हम लोगों का डांवाडोल हृदय शान्ति की ओर जा रहा है तो अनुमान करना चाहिये कि जिस समय वेदों की ११२७ ग्यारह सौ सत्ताईस शाखाओं का पठन पाठन प्रचरित होगा उस समय के मनुष्य कैसी सौन्दर्यपूर्ण सभ्यता को प्राप्त होंगे।

इन क्रोड़ों वर्षों के भीतर कितने ग्रन्थ बने कितने ब्रह्मर्षि और राजर्षि मनुष्य समाज को कितना उन्नत कर गए इस का ठीक २ पता लगाना अत्यन्त कठिन है। मानव-समाज के सौभाग्य से इतने विप्लवों के पश्चात् भी चारों वेद तो ज्यों के त्यों हमें मिले ही परन्तु हर्ष की बात है कि वेदों के अर्थ बोधन कराने वाले तथा नाना प्रकार के इतिहासों से पूरित अति प्राचीन ब्राह्मण नामक ग्रन्थ भी हमें मिल गए। आज कल आर्षेय-ब्राह्मण, दैवत ब्राह्मण, मन्त्रोपनिषद्-ब्राह्मण संहितोपनिषद्-ब्राह्मण,

वंश-ब्राह्मण, महा-अद्भुतब्राह्मणादि नामों से प्रसिद्ध जो अनेक ग्रन्थ मिलते हैं जिन में थोड़े सत्य के साथ वेद-विरुद्ध अनेक प्रकार की बातें भरी पड़ी हैं वे वास्तव में ब्राह्मण नहीं हैं क्योंकि इन ग्रन्थों में ब्राह्मणों के पूरे गुण नहीं मिलते । प्रामाणिक-ब्राह्मण केवल चार हैं । ऋग्वेद सम्बन्धी ऐतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेद सम्बन्धी शतपथ-ब्राह्मण, सामवेद सम्बन्धी साम-ब्राह्मण तथा अथर्ववेद सम्बन्धी गोपथ-ब्राह्मण ॥

किसी २ का जो यह कथन है कि ऐतरेय-ब्राह्मण के कर्त्ता इत्तरा के पुत्र केवल महिदास ऐतरेय हैं, शतपथ के बनाने वाले केवल याज्ञवल्क्य ऋषि हैं, और इसी प्रकार साम-ब्राह्मण तथा गोपथ-ब्राह्मण के बनाने वाले भी एक एक ही ऋषि हैं वह प्रमाणों से पुष्ट नहीं होता । वास्तव में ब्राह्मणों के बनाने वाले केवल चार ही नहीं प्रत्युत अनेक ऋषि हैं। और सम्भव है कि इन के किन्हीं २ भागों के बनने में भिन्न भिन्न समय भी लगे हों तथा पीछे से भी इन में कुछ प्रक्षेप किया गया हो ।

इन ब्राह्मणों के विषय में योरोपीय विद्वानों की पहले सम्मति थी कि इन को बने ३५०० पैंतीससौ वर्षों से अधिक व्यतीत नहीं हुए परन्तु इस विषय में क्रमशः ज्यों २ अधिकतर अन्वेषण होता गया त्यों त्यों उक्त विद्वानों की सम्मति बदलती गई और ब्राह्मण ग्रन्थों के भीतर ही जो ज्योतिष सम्बन्धी बातें लिखी हैं उन से अब निश्चित रूप से सिद्ध हो गया कि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनेक भाग कम से कम १२००० बारह सहस्र वर्ष पूर्व के बने हुए हैं । हमारा विश्वास है कि ब्राह्मणों की जितनी आलोचना होगी उतने ही वे अधिकतर प्राचीन सिद्ध होते जायेंगे ।

अनादि वेदों के प्रकाश के पश्चात् संस्कृत-साहित्य में क्रमशः कौन २ से और कितने ग्रन्थ बने इस का यद्यपि ठीक २ निर्णय होना अब कठिन है तदपि हम इतना अनुमान कर सकते हैं कि वर्तमान काल में संस्कृत-साहित्य में जितने ग्रन्थ मिलते हैं उन सब में प्रायः ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ-ब्राह्मण विशेष प्राचीन हैं परन्तु शतपथ-ब्राह्मण में जो यह लिखा है "यत्किञ्चिन्मनुरवदत् तद् भेषनम्-भेषजतायाः" अर्थात् जो कुछ मनु कहते हैं वह औषधियों की भी औषधि है इस से बोध होता है कि मनु की शिक्षा इन ब्राह्मण-ग्रन्थों के निर्माण के पूर्व भी वर्तमान थी । साम-ब्राह्मण के छान्दोग्य-भाग, प्रपाठक ३, खण्ड ११, प्रवाक् ४ से भी ज्ञात होता है कि इन ब्राह्मण-ग्रन्थों से पूर्व ब्रह्मा, प्रजापति तथा मन्वादि की शिक्षाएं फैल रही थीं । ब्राह्मणों के समय में भी विशेष २ ऋषि तथा उन के शिष्यों

के द्वारा वैदिक-मन्त्रों के किए कतिपय व्याख्यानों (जिन्हें वेद की शाखाएं कहते थे) से वैदिक-धर्म्म का प्रचार हो रहा था ।

गोपथ-ब्राह्मण पूर्व भाग के प्रथम प्रपाठक में जहां ओङ्कार के विषय में छत्तीस ३६ प्रश्न हैं वहां अन्यान्य प्रश्नों के साथ यह भी पूछा गया है "किं वै व्याकरणम् (इस "ओ३म्" के विषय में व्याकरण क्या कहता है ?), शिक्षकाः किमुच्चारयन्ति? (शिक्षक लोग इस का उच्चारण किस प्रकार करते हैं ?) किं छन्दः? (इस विषय में छन्द का मत क्या है?), किं ज्योतिषम् ज्योतिष का मत इस विषय में क्या है?), किं निरुक्तं ? (निरुक्त का मत इस विषय में क्या है ?) । इन्हीं प्रश्नों के साथ कल्प-विषयक भी प्रश्न है । इन प्रश्नों का सविस्तर उत्तर देते हुए व्याकरण के मतानुसार बतलाया है कि "ओ३म्" शब्द "आप्लृ" धातु अथवा "अव" धातु से बना है और आगे चल कर लिखा है कि "ओ३म्" अव्यय भी है और अव्यय किसे कहते हैं इस के लिये निम्नलिखित श्लोक प्रमाण रूप से उद्धृत किया है:—

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु
वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्याति तदव्ययम् ।

अर्थात् जो तीनों लिङ्ग, सब विभक्तियों तथा सब वचनों में भी परिवर्तित नहीं होता उसे "अव्यय" कहते हैं ।

इन सब के देखने से ज्ञात होता है कि गोपथ-ब्राह्मण के समय से पूर्व कोई संस्कृत-व्याकरण श्लोक-बद्ध भी था तथा वेदों के शेष पांच अङ्ग शिक्षा, कल्प, निरुक्त छन्द और ज्योतिष भी वर्त्तमान थे । साम-ब्राह्मण के छान्दोग्य-भाग प्रपाठक ७,खण्ड १, प्रवाक २ के पढ़ने से जहां महर्षि सनत्कुमार और नारद का सम्वाद है यह भी पता लगता है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय से पूर्व अनेक-प्रकार की विद्याएं पढ़ाई जाती थीं । वहां सनत्कुमार के पूछने पर नारद ने बतलाया है कि उन्हों ने ऋग्वेद यजुर्वेद, सामवेद,अथर्ववेद तथा निम्नलिखित विद्याएं भी पढ़ी है:—

"इतिहास, पुराण" (History)

"वेदानां वेदम् " अर्थात वेदों के अर्थ जिन विद्याओं से जाने जांय यथा व्याकरण, निरुक्तादि (Grammar & philology &c.)

" पित्र्यं " पितरों की सेवा सुश्रूषा द्वारा प्रसन्न रखने की विद्या (Anthropology)

"राशिम्" गणित-विद्या, मैथेमैटिक्स (Mathematics)

"दैवम्" उत्पात-विद्या यथा भूकम्प, जलप्लावन, विद्युतकोप, वायु कोप फ़िज़िकल-जियागरफ़ी (Physical Geography)

"निधिम्" खानों की विद्या, (Minerology)

"वाको वाक्यम्" तर्क शास्त्र, लाजिक (Logic)

"एकायनम्" नीति-विद्या, (Ethics)

"देवविद्याम्" ठीक २ नहीं कहा जा सकता कि यहां देव शब्द का क्या अभिप्राय है परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थ में जो आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, बिजली और हवन यज्ञ को तेतीस देव माना है यदि उन की व्याख्या देव-विद्या में हो तो निस्सन्देह यह विद्या बहुत बड़ी होगी जिस के अन्तर्गत सम्पूर्ण तत्व-विद्या यथा रसायन, शिक्षादि सभी होंगे और साथ ही मैटर वा तत्व से भिन्न चेतन-जीव की भी व्याख्या होगी (physical science)

"ब्रह्मविद्याम्"-जिस में ब्रह्म की व्याख्या हो । (Brahma vidya)

"भूतविद्याम्"–प्राणियों की विद्या अर्थात प्राणियों के प्रकार वर्णन तथा उनकी रचनादि (Zoology, Anatomy etc.)

"क्षत्रविद्याम्"-धनुर्विद्या तथा राजशासन विद्या (Military science & Art of Government.)

"नक्षत्रविद्याम्"-ज्योतिष स्ट्रानामी (Astronomy)

"सर्पदेवजनविद्याम्"-का तात्पर्य्य ठीक २ ज्ञात नहीं होता परन्तु सम्भव है कि इस में सर्पों के विष दूर करने की विद्या तथा देव और जन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक प्रकार की विद्याओं का वर्णन हो । (Science treating of venomous reptiles etc.)

यद्यपि ऊपर गोपथ के प्रमाण से हम ने बतलाया है कि गोपथ के निर्माण के पूर्व भी निरुक्त वर्तमान था परन्तु इस से यह परिणाम निकालना ठीक नहीं कि महर्षि यास्क का वर्तमान वैदिक-कोष अर्थात् निरुक्त ब्राह्मणों के पहले था, क्योंकि महर्षि यास्क अपने निरुक्त के अध्याय ९ में लिखते हैं "इत्यपि निगमो भवति" इतना निगम अर्थात् वेद है तथा "इति ब्राह्मणम्" अर्थात् इतना ब्राह्मण है । जब कि महर्षि यास्क अपने ग्रन्थ में ब्राह्मणों का वर्णन करते हैं तो यास्कीय-निरुक्त ब्राह्मणों से पूर्व का निर्मित सिद्ध नहीं हो सकता और इसी प्रकार श्रौत-सूत्र और गृह्य-सूत्र

भी ब्राह्मणों से पूर्व के नहीं है क्योंकि सूत्र-ग्रन्थों में ब्राह्मणों के विषय में लेख आते हैं यथा "ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसी रिति" अर्थात् ब्राह्मणों के नाम इतिहास, पुराण कल्प, गाथा और नाराशंसी भी हैं। यास्कीय निरुक्त में ब्राह्मणों के प्रमाणों के अतिरिक्त याज्ञिक और गाथकों के वचन भी आते हैं परन्तु याज्ञिक और गाथकों के ग्रन्थ कोन २ से थे इस का अब पता नहीं चलता यास्कीय निरुक्त में वर्तमान-श्रौत तथा गृह्य-सूत्रों का प्रमाण नहीं आता इस से अनुमान होता है कि वर्तमान श्रौत तथा गृह्य-सूत्र यास्कीय निरुक्त के पीछे बने हैं परन्तु वर्तमान षड्दर्शन सूत्र कब बने इस का निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। महर्षि कपिल का सांख्य तो अति प्राचीन है। वैशेषिककार कणाद महर्षि भी बहुत पुराने हैं। महर्षि गौतम का न्याय सूत्र वात्स्यायन ऋषि के पूर्व था। महर्षि पतञ्जलि का योगदर्शन महर्षि व्यास के समय अर्थात् महाभारत-युद्ध के समय से (जिसे हम आगे चलकर सिद्ध करेंगे कि प्रायः ५००० पांच सहस्र वर्ष पूर्व हुआ था) पहले बना था क्योंकि उस पर महर्षि व्यास का भाष्य है। उत्तर-मीमांसा (वेदान्तसूत्र) के कर्त्ता महर्षि व्यास तथा पूर्व मीमांसा के कर्त्ता महर्षि जैमिनि समकालीन थे। पूर्व कथित प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वेदों के अङ्ग तथा उपाङ्ग उपवेद तथा अन्यान्य विद्याएं बहुत प्राचीन काल से चली आती हैं परन्तु उन का अति-प्राचीन रूप अब प्रायः दृष्टि गोचर नहीं होता वह सब विद्याएं अब प्रायः परिवर्तित शब्दों में वर्णित दिखाई देती हैं। कतिपय विद्याएं (यथा धनुर्वेद, शिल्प वेदादि) तो अब नाम मात्र रह गई हैं। अंगिरा, और भारद्वाज की शस्त्रास्त्र-विद्या अब कहीं भी नहीं मिलती। विश्वकर्म्मा, त्वष्टा, देवज्ञ तथा "मय" कृत शिल्प-शास्त्र का कहीं भी पता नहीं है। तात्पर्य्य यह है कि अनेक घोर विप्लवों ने विद्या सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों को विनष्ट कर दिया है मानों संसार के शुभ चिन्तक सैकड़ों ऋषियों के सैकड़ों वर्षों के परिश्रमों से बने सहस्रों ग्रन्थ छार हो गए हैं, शोक ! *

अब हम इस ग्रन्थ में ब्राह्मणों के समय के इतिहास के पीछे सूत्रों के समय का इतिहास लिखेंगे तदनन्तर क्रमशः अन्यान्य समयों के इतिहास लिखे जांयगे।

---

* तबक़ाते नासरी में लिखा है कि कुतुबुद्दीन ऐबक पादशाह के ज़माने में जब शहर बिहार फ़तह हुआ तो एक लाख के क़रीब तो सिर्फ़ ब्राह्मण ही कतल किए गये थे और हिन्दुओं का एक क़दीमी कुतुबख़ाना जिस में बहुत पुरानी २ किताबें मौजूद थीं दिया गया।

अब विचारना चाहिये कि ब्राह्मणों में किन २ विषयों का वर्णन है । ब्राह्मणों में सम्वाद रूप से जीवों को सद्गति देने वाली ब्रह्म-विद्यादि का वर्णन है यथा महर्षि याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का सम्वाद । वहां महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं कि हे मैत्रेयी ! "य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम् आत्मनोन्तरोयमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः" (शतपथ-ब्राह्मण) जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में स्थित और जीवात्मा से भिन्न है जिस को मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में व्यापक है, जिस परमात्मा का जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है वैसे ही जीव में परमेश्वर व्यापक है, जीवात्मा से भिन्न रह कर जीव के पाप पुण्यों का साक्षी हो कर उन के फल जीवों का दकर नियम में रखता है, वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा है अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है उस को तू जान । इस प्रकार के सम्वाद गाथा नाम से प्रसिद्ध हैं । ब्राह्मणों में इतिहास हैं यथा देवासुरसंग्रामादि का वर्णन। ब्राह्मणों में जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का वर्णन है जिसे पुराण कहते हैं। ब्राह्मणों में अनेक वेद-मन्त्रों के अर्थ लिखे हैं, अनेक द्रव्यों के गुणों का वर्णन है जिसे कल्प कहते हैं। ब्राह्मणों में यज्ञों का विस्तार पूर्वक वर्णन है । गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि अग्न्याधेय, पूर्णाहुति, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, अग्निष्टोम, राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध पुरुषमेध, सर्वमेध, दक्षिणावन्त, तथा सहस्रदक्षिणा नामक यज्ञ क्रमशः किए जाते हैं, "स य एवमेतान् यज्ञ क्रमान्वेद यजेन स आत्मा स लोको भूत्वा देवानप्योति" (गोपथ पूर्व भाग, प्रपाठक ९) जो कोई क्रमशः कहे हुए इन यज्ञों की विधी को जानता है वह पुरुष यज्ञ द्वारा सुप्रसिद्ध होता हुआ दिव्य गुणों को प्राप्त हो जाता है । वेदों में जिन धर्म्मों का उपदेश है तथा जिन पदार्थों का वर्णन है उन को जान कर कौन २ मनुष्य उत्तम बना तथा धर्म्म विरुद्ध चल कर वा पदार्थ विज्ञान रहित होकर कौन २ दुखी हुआ ब्राह्मणों के इस वर्णन को नाराशंसी कहते हैं । इसी नाराशंसी में कतिपय मनुष्यों की संक्षिप्त जीवनी भी है ।

अनेक विद्वानों का मत है कि ब्राह्मण-ग्रन्थ और आरण्यक-ग्रन्थ भिन्न २ हैं परन्तु बहुतों की सम्मति यह है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों के अन्तिम भागों को ही आरण्यक कहते हैं, यथा शतपथ-ब्राह्मण के अन्त में वृहदारण्यक रक्खा हुआ है ।

जितनी प्रामाणिक उपनिषदें हैं उन में से ईशोपनिषद तो यजुर्वेद का चालिसवां

अध्याय है। शेष उपनिषदों में से कतिपय उपनिषद् तो आरण्यकों से निकली हैं और कतिपय वेदों की जो ११२७) ग्यारहसौ सत्ताईस शाखाएं प्रचरित थीं उन में से निकली हुई हैं।

प्रामाणिक उपनिषद् दश हैं जिन के नाम हैं "ईश, केन कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरय, तैत्तिरीय. छान्दोग्य और बृहदारण्यक।"

इन में से (१) "ईश वा ईशावास्य वा वाजसनेय संहितोपनिषद् यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय है। (२) केन वा तलवकारोपनिषद् सामवेद की किसी प्राचीन शाखा से निकली है, साम-ब्राह्मण के आरण्यक में यह विद्यमान नहीं है क्यों कि सामब्राह्मण का आरण्यक छान्दोग्योपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है (३) कठ, कठ-वल्ली वा काठकोपनिषद् यजुर्वेद की कठशाखा से निकली है (४) प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद की किसी प्राचीन शाखा से निकली है क्योंकि अथर्ववेद का जो गोपथ-ब्राह्मण है उस में प्रश्नोपनिषद् वर्तमान नहीं है। हां यदि प्रश्नोपनिषद् गोपथ का आरण्यक सिद्ध हो जाय और गोपथ से सदा पृथक् वर्तमान मानी जाय तो इस अथ-र्ववेदीय-ब्राह्मण को आरण्यक कह सकेंगे। (५) मुण्डकोपनिषद् भी अथर्ववेद की किसी प्राचीन शाखा से निकली है। गोपथब्राह्मण में इस का भी कहीं पता नहीं है। (६) माण्डूक्योपनिषद् अथर्ववेद की माण्डूक्य शाखा से निकली है। (७) ऐतरेय उपनिषद् ऐतरेय ब्राह्मण का आरण्यक भाग माना जाता है परन्तु ऐतरेय ब्राह्मण के नाम से जो ग्रन्थ छपा हुआ है उस में यह आरण्यक भाग नहीं मिलता प्रत्युत यह आरण्यक, उपनिषद् नाम से ही प्रसिद्ध पृथक मिलता है। (८) तैत्तिरिय उपनिषद् यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से निकली है। (९) छान्दोग्यो-पनिषद् सामवेद के साम ब्राह्मण (जिस का नाम ताण्ड्य-महाब्राह्मण भी है) का आरण्यक भाग है परन्तु २५ प्रपाठकों का जो ताण्ड्य ब्राह्मण है उस का भाग यह नहीं है प्रत्युत २५ प्रपाठक ताण्ड्य तथा ८ प्रपाठक छान्दोग्य कुल ३३ प्रपाठकों का जो ताण्ड्य महाब्राह्मण है उस का यह अन्तिम भाग है। (१०) बृहदारण्य-कोपनिषद् यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण का आरण्यक भाग है।

इन दश उपनिषदों के अतिरिक्त कौषीतकी ब्रह्मणोपानिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद् तथा मैत्र्युपनिषद् भी कुछ प्राचीन हैं एवं कुछ २ मान्य की दृष्टि से देखी जाती हैं क्यों-कि स्वामी शङ्कराचार्य्य ने वेदान्तदर्शन के अपने भाष्य में उक्त दश अति प्राचीन तथा उक्त तीन कुछ प्राचीन अर्थात तेरहों उपनिषदों से प्रमाण उद्धृत किए हैं परन्तु

आप ने भाष्य केवल ईशादि दशोपनिषदों पर ही किया है । महर्षि दयानन्द ने भी अपने सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में मैत्र्युपनिषद् तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् के प्रमाण दिए हैं जिस से ज्ञात होता है कि वे दोनों उपनिषदें भी कुछ २ प्रामाणिक हैं परन्तु महर्षि ने भी जहां ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय लिखा है वहां केवल ईशादि दशोपनिषदों को ही प्रमाण-कोटि में रक्खा है ।

उक्त उपनिषदों के अतिरिक्त ऋग्वेदीय उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध आत्म-प्रबोध निर्वाण नादविन्दु आदि, यजुर्वेदीय उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध पैङ्गल तुरीय, निरालम्बादि, सामवेदीय उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध मैत्रायणी, कुण्डिका आरुणि आदि तथा अथर्ववेदीय उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध दत्तात्रेय, शरन, शाण्डिल्यादि जिन की संख्या लग भग डेढ़सौ होगी साम्प्रदायिक पक्षपातों तथा असम्भव गाथाओं से भरी पड़ी हैं जिस कारण वेद-विरुद्ध नवीन और अमान्य हैं ।

द्वितीय परिच्छेद ।

यज्ञ शब्द के अर्थ ।

पाश्चात्य विद्वानों और उनके भारतीय शिष्यों का सम्भ्रम-यज्ञ के धात्वर्थ—सृष्टि से शिक्षा—भारत के इतिहास और सामाजिक संगठन में यज्ञ शब्द का प्रयोग ।

ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में प्रसिद्ध योरोपीय विद्वान् वीबर लिखते हैं:—

"उनका (ब्राह्मण ग्रन्थों का) उद्देश्य पशुबध सम्बन्धी रीतियों और सूत्रों को रीति के साथ उनके परस्पर सम्बन्धों को जतला कर और उन के सांकेतिक सम्बन्ध बतलाकर, रीति के साथ जोड़ना है.........रीति को बतलाते समय यह बड़े विस्तार रूप से व्याख्या करते हैं.........इन में हम अधिक प्राचीन रीतियां, अधिक प्राचीन लोक कथाएं और अधिक प्राचीन दार्शनिक विचार पाते हैं ।"

पाश्चिमीय विद्वान् जब कभी ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में अपनी सम्मति प्रकाशित करते हैं तो यही कहते हैं कि इन में पशुबध का विधान है अर्थात् विशेष २ पशुओं को मारकर उनके शरीर को नाना प्रकार से होम करने की विधि उक्त ग्रन्थों में लिखी हुई है । मैक्समूलर और वीबर का तो यह मत था ही, शोक है कि राजा-राजेन्द्रलाल मित्र तथा महाशय रमेशचन्द्रदत्त तथा अन्यान्य कतिपय भारतवासी भी इस विषय में उक्त यूरोपीय विद्वानों का अनुकरण कर लिख चुके हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थ में यज्ञों के निरर्थक विधियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, कहीं तो यह लिखा है कि अमुक देवता को प्रसन्न करने के लिये अमुक पशु को अमुक प्रकार से हनन करके उसका हवन करना चाहिये, कहीं लिखा है कि अमुक इच्छा की पूर्ति के लिए अमुक ऋतु में वेदों के अमुक अध्याय का पाठ कर अमुक इष्ट देवता की आराधना करनी चाहिए इत्यादि ।

यदि भारतवर्ष के प्राचीन और नवीन सब विद्वानों की ब्राह्मणों के विषय में एक ही सम्मति होती और बड़े २ दार्शनिक तथा विज्ञानी भी ब्राह्मण ग्रन्थों को तुच्छ दृष्टि से देखते तो हम भी उक्त ग्रन्थों को वैसा ही मानलेते । परन्तु हम देखते हैं कि भारतवर्ष के बड़े २ ऋषि इन ग्रन्थों को गहरी पूजा की दृष्टि से देख चुके हैं, छः दर्शनों में से एक मीमांसा दर्शन उनकी कठिनाइयों की व्याख्या के लिये लिखा गया, इस युग के सब से अधिक संस्कृत के विद्वान् महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती स्वतः-

प्रमाण वेदों के अनन्तर परतः प्रमाण जितने ग्रन्थ हैं उन में इन्हें प्रथम कोटि का बतला गए, आप लिखते हैं कि "धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब२ जिस२ के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए तब तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाए, जब बहुतों के आत्मा में वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाए उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उस का व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ। अतः आवश्यक प्रतीत होता है कि हम दोनों पक्षों की परीक्षा करके निश्चय करें कि इन में से कौनसा पक्ष सत्य है। हमारा विश्वास है कि यदि यह निर्णय हो जावे कि "यज्ञ" शब्द के क्या अर्थ, हैं तो पुनः उक्त दोनों पक्षों के सत्यासत्य के समझने में बड़ी सुविधा हो जायगी।

* **यज्ञ**—बौद्धायन गृह्य परिभाषा सूत्र (१, १, २०—२३) में लिखा है:—

स चतुर्धा ज्ञेय उपास्यश्च—स्वाध्याय-यज्ञो जपयज्ञः कर्मयज्ञो मानसश्चेति। तेषां परस्पराद्दशगुणोत्तरो वीर्येण। ब्रह्मचारि-गृहस्थ-वनस्थ-यतीनाम् विशेषेण प्रत्येकशः। सर्व एवैते गृहस्थस्याप्रतिषिद्धाः क्रियात्मकत्वात्।

अर्थात् वह (यज्ञ) चार प्रकार का जानने तथा सेवन करने योग्य है। (वे चार प्रकार ये हैं) (१) स्वाध्याय-यज्ञ (अर्थात् अध्ययन, अध्यापनरूप यज्ञ) (२) जपयज्ञ (अर्थात् पढ़े पढ़ाए ग्रन्थों का बारम्बार पाठ अथवा परमात्मा के नामों का बारम्बार उच्चारण) (३) कर्म-यज्ञ (अर्थात् कर्मकाण्ड सम्बन्धी यज्ञ वा वे सब परोपकार सम्बन्धी कर्म जिन से प्राणियों को लाभ पहुंचे) (४) मानस-यज्ञ (मनवशी-करण, वा योग साधन वा समाधि सम्पादन रूप यज्ञ)। इन (यज्ञों) में से प्रत्येक पिछला प्रत्येक पहले से दश गुण बलवान् है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी के लिए प्रत्येक लाभकारी हैं। ये सब के सब निश्चय कर गृहस्थ के लिए अवर्जित हैं (अर्थात् इन में से प्रत्येक, गृहस्थ के करने योग्य हैं) यज्ञ सम्बन्धी इस वर्णन से तो यह सिद्ध नहीं होता कि यज्ञ उसे कहते हैं जिस में पशुओं के मांस से हवन किया जावे। क्योंकि गृहस्थ क्रियात्मक अर्थात् कर्मशूर है।

---

* "यज्ञ" विषयक विशेष लेख इस भाग के षष्ठ परिच्छेद में इस प्रश्न के उत्तर में कि "क्या प्राचीन आर्य्य गोमांस भक्षक थे ?" देखिये, तथा नरमेध, अश्वमेध यज्ञ प्रकरण में भी देखिए।

"यज्ञ" शब्द " यज " धातु से निकला है जिस के विषय में महर्षि पाणिनि अपने धातु पाठ में लिखते हैं " यज देवपूजा संगतिकरण, दानेषु " अर्थात् यज धातु देव पूजा, संगतिकरण और दान अर्थ में प्रयुक्त होता है।

" देवपूजा " का अर्थ है देव का सत्कार करना अथवा देव से यथायोग्य उपकार लेना।

" संगतिकरण " का अर्थ है एकत्रित करना वा सम्मेलन करना।

" दान " का अर्थ है किसी वस्तु का देना अथवा दूसरों के उपयोग के लिये उपस्थित करना।

अतः " यज्ञ " शब्द का अर्थ हुआ "संगति और दान से देव पूजा करनी"

अब यदि यह स्पष्ट हो जाय कि " देव " शब्द के क्या अर्थ हैं तो "यज्ञ" का अभिप्राय भी भली भांति समझ में आ जायगा।

" देव " शब्द दिवु धातु से निकला है। जिस के विषय में महर्षि पाणिनि अपने धातु पाठ में लिखते हैं " दिवु क्रीड़ा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न कान्ति, गतिषु" अर्थात दिवु (दिव) धातु क्रीड़ा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति अर्थ में प्रयुक्त होता है।

क्रीड़ादि के अर्थ निम्नलिखित हैं:—

(१) क्रीड़ा—खेलना।

(२) विजिगीषा—विजय की इच्छा।

(३) व्यवहार—सामाजिक बर्ताव।

(४) द्युति—प्रकाश।

(५) स्तुति—प्रशंसा।

(६) मोद—आनन्द।

(७) मद—अपनी सत्ता का गर्व।

(८) स्वप्न—स्थूल गति वा बाह्य गति के अभाव में अन्तः विचार व अन्तः-कार्य्य।

(९) कान्ति—शोभा।

(१०) गति—ज्ञान, गमन, प्राप्ति।

अतः यज्ञ का भावार्थ हुआ मनुष्यों की सङ्गति वा शक्तियों के सम्मेलन से

सामाजिक आनन्द वृद्धि के लिए यत्न, प्राकृतिक शक्तियां तथा उन शत्रुओं पर जो आत्मा को गिराने वाले अर्थात् उन्हें नीच गति को लेजाने वाले हैं उन पर विजय प्राप्ति का उद्योग, परस्पर सुव्यवहार, प्रकाश की विस्तृति, प्रशंसनीय कार्य्यों की सिद्धि के लिए व्यवसाय, सच्चे हर्षों की प्राप्ति, आत्मगौरव वा स्वाभिमान की रक्षा का यत्न, स्वप्न वा अन्त: विचार द्वारा कार्य्यों का विवेचन, सब प्रकार की शोभाएं और सब प्रकार के ज्ञानों की प्राप्ति के लिए मिल कर (गमन करना) काम करना अर्थात् प्रत्यक प्रकार की उन्नति के लिए सामूहिक शक्तियों और द्रव्यों का व्यय करना ।

इस से सिद्ध हुआ कि जो पुरुष प्राणीमात्र के कल्याण के लिए अथवा मनुष्य-मात्र के उपकार के लिए अथवा अपने देश में वसने वाले मनुष्यसमाजों की उन्नति के लिए कोई महान्कार्य्य करता है जिस से सुखों और शोभाओं की वृद्धि होती है वह पुरुष यज्ञकर्त्ता कहला सकता है ।

अब पञ्च महायज्ञों पर यदि विचार किया जाय तो उन में भी कहीं पशुवध का पता नहीं चलता ।

पञ्च महायज्ञों के ये नाम हैं, ब्रह्मयज्ञ देवयज्ञ वा होम, पितृयज्ञ वा तर्पण, भूतयज्ञ वा बलिदान, अतिथि यज्ञ वा नृयज्ञ । ब्रह्मयज्ञ इस लिए किया जाता है कि जीवात्मा, शक्तियों के भण्डार परमात्मा के संयोग से अपने भीतर, विशेष शक्तियां का सञ्चार करके जगत् की सेवा के लिए अधिकतर शक्तिमान् हो जावे । वैसे तो ब्रह्मचारी सद्गृहस्थ और वानप्रस्थ सभी प्रतिदिन ब्रह्मयज्ञ करके परमात्मा से यथा-सम्भव बल धारण करने का यत्न करते हैं परन्तु परमात्मा के योग से अन्य सभी आश्रमियों से अधिकतर बल धारण करने वाला संन्यासी होता है इसी कारण वह सब से बड़ा ब्रह्मज्ञानी कहलाता और जगत् का सब से अधिक उपकार भी कर सक्ता है। ऋग्वेद में संन्यासी को "दिशां पतिः" शब्द से इस कारण सम्बोधित किया है कि वह सब दिशाओं में स्थित मनुष्यों को सच्चा ज्ञान देकर उन का पालन करता है, संन्यासी का कोई एक विशेष देश नहीं प्रत्युत सारी पृथिवी उस का देश है, पृ-थिवी के मनुष्यमात्र के ही लिए नहीं प्रत्युत प्राणीमात्र के कल्याण के लिए वह यत्न करता है. यदि प्रत्येक मनुष्य जाति (नेशन) के स्वदेश-भक्त (पेट्रियट्स) अपने अपने देशों के शुभचिन्तक हैं तो संन्यासी सब देशों के पेट्रियटों के बीच प्रीति संस्थापन करने वाला महापुरुष है, वह किसी देश वा मनुष्य जाति का पक्ष न करता

हुआ निर्भयता से सब को उपदेश करता है मानो मनुष्य जाति के पारस्परिक नियम (इंटर नेशनल ला) का व्यवस्थापक * सन्यासी है। अतः सब से बड़ा यज्ञ करने वाला भी वही है परन्तु उस के लिए लिखा है कि वह "अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते" अर्थात् सब प्राणियों के साथ निर्वैर वर्तता हुआ मोक्ष के लिए सामर्थ्य बढ़ाया करे † अतः सिद्ध हुआ कि ब्रह्मयज्ञ में भी पशु बध का विधान नहीं है।

---

* जिस समय इंगलिस्तान के प्रसिद्ध विद्वान् हर्बर्ट स्पेंसर जीवित थे उस समय जापान के राजनीतिज्ञ "मार्कुईस इटो" ने उनसे प्रार्थना की थी कि वह जापान की रक्षा तथा वृद्धि के विषय में उन्हें सदुपदेश दें। हर्बर्ट स्पेंसर ने जापान की रक्षा तथा वृद्धि के लिए अनेक उपदेश दिए यह उपदेश लिख कर पत्र के अन्त में सूचित कर दिया था कि मेरा यह उपदेश मेरे जीवन काल तक छपने न देना। इस में सन्देह नहीं कि हर्बर्ट-स्पेंसर ने अपनी निष्पक्ष सम्मति देकर एक संन्यासी के कर्त्तव्यों का पालन करने का यत्न किया था परन्तु वह संन्यासी के धर्म्म को पूर्ण नहीं कर सके। ब्राह्मण की पदवी सन्यासी से छोटी है परन्तु ब्राह्मण के विषय में मनुस्मृति में लिखा है कि "सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव, अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा" अर्थात् ब्राह्मण धर्म्म करता हुआ सम्मान से बिष की तरह डरे और अपमान की अमृत की तरह आकांक्षा करे। जिस तरह हर्बर्ट स्पेंसर ने एक सत्य बात बतलाते हुए योरोप वासियों के द्वारा होने वाले अपमान से भयभीत होकर इस लेख को स्वजीवन काल में छपने न दिया वैसा काम एक सच्चा सन्यासी नहीं करता, प्रत्युत वह अपने प्राणों पर भी संकट उपस्थित होते हुए सत्य को छिपाने का यत्न नहीं करता। इसी कारण पक्षपात रहित सन्यासी मनुष्य मात्र का मान्यास्पद होता है।

† सन्यासी पक्षपात रहित और सब का कल्याण कर्त्ता है इस विषय के कतिपय प्रमाण यहाँ उद्धृत किये जाते हैं:—

शर्य्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा। बलन्दधान आत्मनि करिष्यन् वीर्यं महदिन्द्रायेन्दो परिस्रव। ऋग्वेद मण्डल ९, सूक्त ११३, मन्त्र १।

मैं ईश्वर सन्यास लेने हारे तुझ मनुष्य को उपदेश करता हूं कि जैसे मेघ का नाश करने हारा सूर्य्य (सूर्य-किरण) हवनीय पदार्थों से युक्त भूमितल में स्थित रस को पीता है वैसे सन्यास लेने वाला पुरुष उत्तम मूल फलों के रस को पीवे और अपने आत्मा में बड़े सामर्थ्य को करूंगा ऐसी इच्छा करता हुआ दिव्य-बल को धारण करता हुआ परमैश्वर्य्य के लिए चन्द्रमा के तुल्य सब को आनन्द करने हारे पूर्ण विद्वान् तू संन्यास लेके सब पर सत्योपदेश की वृष्टि कर।

आपवस्व दिशांपत आर्जीकात्सोममीढ्वः ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत इन्द्रायेन्दो परिस्रव। ऋग्वेद, मण्डल ९, सू० ११३, मं० २।

देवयज्ञ—देवयज्ञ का अर्थ अग्निहोत्र है। अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि (जल), पृथिव्यादि अनेक जड़ देवताओं (दिव्यगुणविशिष्ट पदार्थों) की शुद्धि होती है तथा शुद्ध वाय्वादि से विद्वानों वा चेतन देवताओं को भी लाभ पहुंचता है इस कारण अग्निहोत्र को देवयज्ञ कहते हैं। अग्निहोत्र से भारी परोपकार होता है और अग्निहोत्र करने वाले को समझना पड़ता है कि सर्व के लाभ में ही उस का लाभ है।

पितृयज्ञ—पितृयज्ञ का अर्थ माता, पिता, पितामहादि अपने पूज्य सम्बन्धी तथा सोमसद, अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, सोमपाः, हविर्भुज, आज्यपाः, सुकालिन, यमराजादि विद्वज्जन जो पितर नाम से प्रसिद्ध हैं उनकी सेवा शुश्रूषा, तथा श्रद्धापूर्वक अन्न, जलादि से उन को तृप्त करना है। कोई भी मनुष्यजाति उन्नति नहीं कर सक्ती

हे सौम्यगुण-सम्पन्न ! सत्यसे सबके अन्तःकरण को सींचने हारे सब दिशाओं में स्थित मनुष्यों को सच्चा ज्ञान देके पालन करने हारे यमादि गुण युक्त संन्यासिन्! तू यथार्थ बोलने सत्यभाषण करने से सत्य के धारण में सच्ची प्रीति और प्राणायाम योगाभ्यास से सरलता से निष्पन्न होता हुआ तू अपने शरीर इन्द्रिय (मन बुद्धि को पवित्र कर परमैश्वर्य्य युक्त परमात्मा के लिए सब ओर से गमन कर।)

ऋतं वदन्नृत द्युम्न सत्यं वदन्तसत्य कर्मन्। श्रद्धां वदन्तसोम राजन्धात्रा सोमपरिष्कृत इन्द्रायेन्दो परिस्रव। ऋग्वेद, मण्डल ९, सू० ११३, मं० ४।

हे सत्य धन और सत्य कीर्ति वाले यतिवर ! पक्षपात छोड़ के यथार्थ बोलता हुआ, हे सत्य वेदोक्त कर्म्म वाले संन्यासिन् ! सत्य बोलता हुआ सत्य धारण में प्रीति करने को उपदेश करता हुआ सौम्य-गुण सम्पन्न सब ओर से प्रकाश युक्त आत्मा वाले योगैश्वर्य युक्त सब को आनन्ददायक संन्यासिन् ! तू सकलविश्व के धारण करने हारे परमात्मा से योगाभ्यास करके शुद्ध होता हुआ योग से उत्पन्न हुए परमैश्वर्य्य की सिद्धि के लिये पुरुषार्थ कर।

यत्र ब्रह्मापवमान छन्दस्यां वाचं वदन्। ग्राव्णा सोमे महीयते सोमेनानन्दं जनयन्निन्द्रायेन्दो परिस्रव। ऋ० मण्डल ९, सू० ११३, मं० ६।

हे स्वतन्त्रता युक्त वाणी को कहते हुए विद्या, योगाभ्यास और परमेश्वर की भक्ति से सब के लिए आनन्द को प्रकट करते हुए आनन्दप्रद पवित्रात्मन् ' पवित्र करने हारे संन्यासिन्! जिस परमैश्वर्य युक्त परमात्मा में चारोंवेदों का जानने हारा विद्वान् महत्व को प्राप्त होकर सत्कार को प्राप्त होता है जैसे मेघ से सब जगत् को आनन्द होता है वैसे तू सब को परमैश्वर्य्य युक्त मोक्ष का आनन्द देने के लिए सब साधनों को सब प्रकार से प्राप्त करा।

यदि उस में विद्वान् वैद्य, वृद्ध तथा अन्य माननीय पुरुष पूजित न होते हों एवम् वे निश्चिन्त हो कर अपने देश की दशा के दर्शक तथा उस की उन्नतियों के लिए विचार करने वाले न बन सक्के हों ।

भूतयज्ञ—भूतयज्ञ का अर्थ पतित, स्वपचादि मनुष्य, कुष्ठी आदि पापरोगियों, मनुष्यों के आश्रित श्वानादि पशु तथा कौए, कृमि आदि छोटे जीवों के लिए बलि वा भोजन देना है । इस कर्म्म से मनुष्य दुखियों तथा निस्सहायों के साथ सहानुभूति प्रकट करता और क्षुद्र जीवों पर दया करता है । निस्सहाय लोग इस भूतयज्ञ के कारण ही प्राचीन आर्य्यावर्त में ऐश्वर्य्यवानों का जीवन कठिन बनाने के लिए यत्न नहीं करते थे जिस प्रकार कि आज कल योरोप के निस्सहाय लोग वहां के श्रीमानों का दम नाक में कर रहे हैं । योरोप वासी यदि भूतयज्ञ का अनुष्ठान करने लगें तो उन के देशों से भी असन्तोष का एक बड़ा भाग दूर हो सक्ता है ।

अतिथियज्ञ—अतिथि उन ज्ञानी महात्माओं (विशेष कर परिव्राज्काचार्य्यों) का नाम है जो परोपकारार्थ उपदेश करते हुए बिना किसी नियत तिथि के अकस्मात् गृहस्थियों के स्थान पर पंहुच जाते हैं, इन की भली भांति सेवा शुश्रूषा करनी अतिथियज्ञ कहलाता है । यदि धर्म्मात्मा संन्यासियों की आजीविका का प्रबन्ध गृहस्थ समाज न करे जिस कारण उन्हें अपने पोषणादि के लिए भी श्रम करना पड़े तो वह निश्चिन्त और निर्भय हो कर उपदेश नहीं कर सकेंगे जिस का परिणाम यह होगा कि मनुष्य जाति के अन्तर स्वार्थ, आलस्य, प्रमाद, दुष्टाचारादि दुर्गुण फैल जावेंगे और वह नाश को प्राप्त हो जावेगी अतःयह यज्ञ भी परोपकारार्थ ही किया जाता है । ये तो हुए संक्षेपतः दैनिकयज्ञ ।

प्राचीन शास्त्रों में दर्श पौर्णमास जो पाक्षिक यज्ञ हैं वे भी अमावस्या और पूर्णिमा को किए जाते हैं क्योंकि पक्ष २ के अनन्तर सृष्टि की शोभा बदलती रहती है, इन शोभाओं से आनन्द उठाने तथा इन शोभाओं के दाता सृष्टिकर्त्ता को धन्यवाद देने के लिए ही ये पाक्षिकयज्ञ किए जाते हैं ।

इसी प्रकार ऋतुओं के अन्त अथवा आरम्भ पर जो आग्रयण तथा चातुर्मास्यादि यज्ञ किए जाते हैं वे भी इसी निमित्त किए जाते हैं कि सृष्टि की अवस्था में जो परिवर्तन हुआ है उस की शोभा का आनन्द मिल कर उठाया जा सके और प्रकृति के परिवर्तन के साथ मनुष्य के भोजन वस्त्रादि में भी जिस प्रकार के परिवर्तनों की

आवश्यकता हो वे परिवर्तन भी किए जावें । यही तो कारण है कि विशेष ऋतुओं के यज्ञों के लिए विशेष प्रकार की सामग्री का विधान है

अब यदि राजसूय, वाजपेय, अश्वमेधादि बृहद्यज्ञों की ओर विचार किया जाय तो यही सिद्ध होगा कि ये यज्ञ भी परोपकारार्थ ही किए जाते थे ।

राजसूय-यज्ञ, यज्ञकर्त्ता राजा तथा उस की प्रजा की शक्तियों का प्रदर्शन था * यज्ञ करते समय राजा को उपदेश किया जाता था कि राज भी एक यज्ञ है अतः राजा को चाहिए कि स्वार्थ छोड़ कर निर्बलों की क्रूर बलवानों से रक्षा करे और प्रजा की वृद्धि एवं उस के उपकार के लिए सदा यत्न करता रहे । महाराज युधिष्ठिर जब भारतवर्ष के महाराजाधिराज बने थे तो उन्होंने भी धार्म्मिकशक्ति के प्रताप की विस्तृति के लिए एक महान् यज्ञ किया था जिस में देश देशान्तर के नृपतिगण सम्मिलित हुए थे मानों इस यज्ञ में इस विचार की महान्ता प्रकट की गई थी कि सार्वभौम नियमों के अनुसार यदि सार्वभौम-शासन हो तो उस से मनुष्य मात्र को लाभ पहुंचता है और छोटे २ राजाओं को परस्पर के झगड़ों के कारण प्रजा के नाश का कारण नहीं बनना पड़ता ।

सारांश यह है कि सर्वसाधारण के लाभ के लिए जो कुछ कार्य्य प्राचीन आर्य्यावर्त में किए जाते थे वे सब के सब यज्ञ कहलाते थे ।

मनुस्मृति में एक श्लोक आया है जिस का तात्पर्य्य यह है कि ब्राह्मण अभिमान त्याग से, क्षत्रिय यज्ञ से और वैश्य दान से शुद्ध होता है । यह श्लोक देश-प्रबन्ध की सौन्दर्यता बड़ी उत्तमता के साथ दर्शाता है। इस श्लोक से पता लगता है कि प्राचीनकाल में वैश्य लोग धन कमा कर (जो कुछ उन की वाणिज्यादि की आवश्यकताओं से अधिक होता था उसे) प्रभुमण्डलादि को देते थे, ब्राह्मणलोग निष्पक्षता से उपदेश करते थे और क्षत्रिय लोग भिन्न २ यज्ञों द्वारा प्रजा के उपकार के लिए नानाप्रकार के कार्य्य किया करते थे।

---

* प्रसिद्ध देहली दर्बार भी विविध शक्तियों का प्रदर्शन ही है । यदि देहली दर्बार न हो तो भी हमारे पूज्य सम्राट् अधिराज ही कहलावें परन्तु दर्बार इसलिए किया जाता है कि बड़े समारोह के साथ राज्य की शक्ति की पूर्ण प्रदर्शिनी हो जावे ताकि प्रजा और शत्रुओं की कल्पना-शक्ति इतनी जकड़ जावे कि राज-विद्रोह और आघात का कोई साहस ही न कर सके ।

ऐतरेय ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है "यज्ञोपि, तस्यै जनतायै कल्पति" अर्थात् "जनता" यानी मनुष्यों के समूहों के (सुख के) लिए ही यज्ञ होता है।

प्राचीन काल में विवाह को भी यज्ञ कहते थे कारण यह था कि प्राचीन आर्य्य विवाह विषयभोग के लिए नहीं करते थे प्रत्युत इस लिए कि उन की सन्तान तेजस्वी उत्पन्न हो और वह क्रमशः वर्चस्वी बन कर संसार का उपकार करें। विवाह के समय जो प्रतिज्ञा-मन्त्र पढ़े जाते हैं उन से स्पष्ट विदित होता है कि जो कोई उत्तम सन्तान उत्पन्न न कर सके उसे विवाह नहीं करना चाहिये।

उपनिषदों तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेक प्रकार के यज्ञ बतलाए गए हैं और उन में कई स्थलों में लिखा है कि इन यज्ञों के कर्त्ता देवता होते हैं। देवता शब्द का अर्थ तो "विद्वांसोहि देवाः" विद्वान् है ही परन्तु इस से दिव्यगुण-विशिष्ट यावत् पदार्थ हैं यथा वायु, वृष्टि आदि उन सब का भी अर्थ-बोध होता है। प्रकरणानुसार इस देवता शब्द का अर्थ जहां जैसा अपेक्षित हो वहां वैसा लगाना चाहिए॥

यज्ञ का सम्मिलित व्यवहार विषय में हमें ईश्वर की सृष्टि से भी कई प्रकार की शिक्षाएं मिलती हैं। सम्मिलित वा सामाजिक-व्यवहार के लिये दो बातों की बड़ी आवश्यकता है एक स्वार्थ-त्याग और दूसरा मिल के काम करना। यदि ये दो बातें न हों तो सभ्य संसार का काम ही नहीं चल सक्ता यदि प्रत्येक धनी मनुष्य कहे कि मैं धनी हूं और मुझे पुलिस की सहायता की आवश्यकता नहीं होगी अतः मैं म्युनिसिपल कर नहीं देता तो सारे सामाजिक प्रबन्ध में गड़बड़ पड़ जाएगा क्योंकि यही बात और करों के विषय में भी कही जा सकती है। यदि प्रत्येक मनुष्य को मृत पशुओं का चर्म लेकर स्वयम् शुद्ध करना पड़े, स्वयम् ही जूता सीना पड़े, स्वयं ही खेती बोकर, नाज को स्वयं ही काट पीस कर रोटी बनानी पड़े, स्वयम् ही कपास का बीज बोकर उस के वृक्ष से कपास लेकर तथा उसे कात कर कपड़ा बनाना पड़े और इसी प्रकार अपनी सारी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये स्वयं ही सब काम करने पड़ें तो प्रत्येक मनुष्य का जीवन क्लेशमय हो जावे और सभ्यता का विस्तार ही जगत में न हो। इसी कारण सभ्यता की विस्तृति के लिये मिलजुल कर काम करना पड़ता है। एक मनुष्य जूते अच्छे बना सकता है तो वह जूते ही बनाता है, दूसरा कपड़ा अच्छा सी सकता है तो वह कपड़े ही सीया करता है, तीसरा खेती अच्छी कर सकता है तो वह खेती ही करता है, अच्छे

बर्तन बनाने वाला बर्तन ही बनाता है । इस रीति से समाज के सारे कार्य्य होते जाते हैं । परमात्मा की सृष्टि में भी यही नियम कार्य्य करता हुआ दिखाई देता है॥

उदाहरण के लिये समझिये कि वृक्ष एक यज्ञ का नाम है इस यज्ञ फल से मनुष्यादि प्राणियों को लाभ पहुंचाना अभीष्ट है ॥

इस यज्ञ के आरम्भ में पृथिवी कुण्ड में बीज की आहुति होती है । जिस प्रकार हुतद्रव्य अपने को भस्म कर दूसरों को लाभ पहुंचाता है उसी प्रकार बीज अपने स्वार्थ को परित्याग कर दूसरों के लाभ के लिये अपने को सर्वथा धूलि में मिला देता है परन्तु वरुण (जल) सूर्य्य, चन्द्र, इन्द्र, (विद्युत), तथा मरुत (पवन) आदि देवता मिल कर उस बीज की रक्षा करते हुए "वृक्षयज्ञ" करने लगते हैं क्रमशः अंकुर उत्पन्न होता है और वह वृक्षाकार हो जाता है और इस में जो फल लगते हैं उस से मनुष्य-समाज तथा पक्षी-समूह के उपकार होते हैं मानों उक्त देवता मिल कर प्राणियों के लिए "वृक्षयज्ञ" कर रहे हैं ॥

उक्त उदाहरण में बतलाया गया कि "वृक्ष यज्ञ" वरुण, सुर्य्य, चन्द्र, इन्द्र तथा मरुत देवता मिलकर कर रहे हैं । इस से यह तात्पर्य्य नहीं निकलता कि वरुण सूर्य्यादि जड़-पदार्थ इस यज्ञ में किसी पशु का बध कर रहे हैं अथवा उक्त जड़ पदार्थों की उपासना मनुष्यों को करनी चाहिये ॥

दूसरा उदाहरण लीजिये, आकाश रूप यज्ञ स्थान से सूर्य्य रूप हवन-कुण्ड जल रहा है जिस प्रकार हवन कुण्ड से निकली हुई सुगन्धि दूर २ तक फैलती हुई प्राणियों को लाभ पहुंचाया करती है उसी प्रकार सूर्य्य-कुण्ड से निकलती हुई रश्मियां पृथिव्यादि ग्रहों पर के रहने वाले प्राणियों तथा वनस्पतियों को नाना प्रकार के लाभ पहुंचा रही हैं । यज्ञ कुण्ड के प्रकाश से जिस प्रकार समीपवर्त्ती अन्धकार दूर होजाता है उसी प्रकार सूर्य्य के प्रकाश से घोर तिमिर नष्ट हो जाता है, सुर्य की रश्मियां वायु को चलाती, वायु अग्नि को प्रदीप्त करता और अग्नि सब प्राणियों के शरीर धारण का हेतु बन रहा है । मानो परमात्मा सृष्टि-रूप एक यज्ञ कर रहा है जिस से असंख्य प्राणियों का उपकार हो रहा है परमात्मा को " यज्ञस्य देवम् " अर्थात सृष्टि-रूप यज्ञ का प्रकाशक इसी कारण तो कहते हैं ॥

छान्दोग्योपनिषद् में मनुष्य को भी एक यज्ञ बतलाया है । यथा "पुरुषो वाव-यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातः सवनम्............" इत्यादि अर्थात

पुरुष यानी मनुष्य का सजीव शरीर एक यज्ञ है इस पुरुष के जो पहले २४ चौवीस वर्ष हैं वे प्रातः सवन हैं इत्यादि।

जिसे इस पुरुष-यज्ञ की व्याख्या देखनी हो वह छान्दोग्य प्रपाठक ३, खण्ड १६ को भली भांति अवलोकन करले।

यज्ञ का विचार और यज्ञ का शब्द प्राचीन आर्यों की दृष्टि में इतना प्रिय और सुन्दर था कि उन्होंने प्राकृतिक–भूगोल तथा पदार्थ–विद्या के कई सिद्धान्तों को भी यज्ञ के अलङ्कार से वर्णन किया है।

शोक है कि इन अलङ्कारों के गूढ़ अर्थों को न समझ कर कई विदेशी इतिहास वेत्ताओं ने यह अशुद्ध परिणाम निकाल लिया कि प्राचीन आर्य्य प्रकृति की शक्तियों को ही परमात्मा समझ कर पूजते थे यदि ये लोग शतपथ ब्राह्मण, काण्ड १४ अध्याय ९ को ध्यान पूर्वक पढ़ते तो इन्हें ज्ञात हो जाता कि प्राचीन आर्य उपास्यदेव किस को मानते थे। वहां स्पष्ट लिखा है कि आठ वसु, एकादश रुद्र द्वादश आदित्य तथा इन्द्र और प्रजापति तेंतीस देव अर्थात् दिव्यगुण विशिष्ट पदार्थ हैं परन्तु इन सब का स्वामी चौंतीसवां महादेव परमात्मा है जिस की उपासना करनी चाहिये।

अतः मानना पड़ेगा कि यज्ञ के अर्थ पशु-बध अथवा निरर्थक विधियों के नहीं हैं, यज्ञ के अर्थ न समझने के कारण ही विदेशी विद्वानों ने ब्राह्मण-ग्रन्थों की निन्दा की है, यथार्थ में ये ग्रन्थ वैज्ञानिक सिद्धान्तों के भण्डार हैं। इन को यदि श्रद्धा से पढ़ा जाय तो बहुत से नवीन वैज्ञानिकों को भी अपने विज्ञान-शास्त्र की उन्नति में सहायता मिल सकती है तथा वैज्ञानिक ऐतिहासिकों को भी इतिहास सम्बन्धी अनेक प्रकार की शिक्षाएं प्राप्त हो सक्ती हैं।

———

तृतीय परिच्छेद ।

ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय में शिक्षा की रीति और विद्या का प्रचार ।

शिक्षा की रीति—सर्व साधारण को बिना मूल्य उच्च से उच्च शिक्षा—कौन २ से विषय गुरुकुलों और परिषदों में पढ़ाए जाते थे—ज्योतिष-शास्त्र की अवस्था—क्या आर्य्यों ने ज्योतिष-शास्त्र चीनियों अथवा बेबिलोनिया के लोगों से सीखा था ? प्रोफ़ेसर बायट और प्रोफ़ेसर वीबर की सम्मति—राजनियम शास्त्र की अवस्था—अङ्कगणित, रेखागणित और बीजगणित की अवस्था-व्याकरण-शास्त्र और भाषा-विज्ञान की अवस्था ।

प्रायः योरोपीय विद्वान् और उन के कतिपय एतद्देशीय अनुयायी कहा करते हैं कि प्राचीन आर्य्यावर्त्त में शिक्षा का कोई क्रम विद्यमान नहीं था । वानप्रस्थी लोग ब्रह्मचारियों को अपने आश्रमों में रख लिया करते थे जो उनके पशुओं को चराया करते और समय मिलने पर कुछ उन से पढ़ भी लिया करते थे । ब्रह्मचारी जब एक विषय एक गुरु से पढ़ लेता था तो वह उस गुरु को छोड़ दूसरे गुरु की सेवा में उपस्थित होता था और उस के पशुओं को चराता तथा उस से विद्याग्रहण करने लगता था । इस प्रकार अपनी आयु का बहुतसा समय लगाकर वह ब्रह्मचारी प्रायः दो तीन विषयों का ज्ञाता बन सक्ता था । उस समय शिक्षा की उन्नत रीतियों का ज्ञान ही किसी को न था और न लोग यह जानते थे कि समय और शक्ति को समुचित रीतियों से किस प्रकार व्यय करना चाहिए । बहुत से विद्यार्थियों को एक स्थान में एकत्रित कर के एक साथ शिक्षा देने से क्या लाभ होता है तथा विद्यार्थी-गण एक साथ पढ़ने के कारण परस्पर के परामर्श, तथा प्रश्नोत्तरादि से एक दूसरे की उन्नति में कितनी सहायता दे सक्ते हैं अथवा यों कहिये कि वर्तमान युनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) प्रणाली से विद्यार्थियों को कितना लाभ हो सक्ता है इस विषय को प्राचीनकाल के आर्य्य नहीं जानते थे ।

परन्तु यह कथन समूलक नहीं है । ब्राह्मण ग्रन्थों की आलोचना यदि भली-भांति की जाय तो पता लगेगा कि तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली बहुत ही उन्नत थी । वृहदारण्यकोपनिषद् (६, २, १,) में लिखा है कि श्वेतकेतु पाञ्चालों की परिषद् में शिक्षा-ग्रहण करने गया था । इन परिषदों का प्रबन्ध किस प्रकार होता

था कदाचित् ब्राह्मण-ग्रन्थों ने इस का वर्णन साधारण समझ छोड़ दिया परन्तु अन्यान्य ग्रन्थों में इस का वर्णन पाया जाता है जिस के अवलोकन से स्पष्ट विदित होता है कि आज कल जिन अर्थों में युनिवर्सिटी शब्द का प्रयोग होता है उन अर्थों में तथा उन से कुछ अधिक अर्थों में भी परिषद् शब्द प्रयुक्त होता था । परिषद् उस विश्वविद्यालय (युनिवर्सिटी) का नाम था, जिस में २१ इक्कीस उपाध्याय (प्रोफ़ेसर) पढ़ाते थे । उन परिषदों वा युनिवर्सिटियों का सविस्तर वृत्तान्त हम आगे लिखेंगे । यहां इतना ही वक्तव्य है कि जो ऐतिहासिक यह कहा करते हैं कि परिषदों अर्थात् युनिवर्सिटियों की प्रणाली बौद्धों के समय से चली है वे सर्वथा भ्रम में हैं । यह प्रणाली बहुत प्राचीन है, ब्राह्मण-ग्रन्थों के समय में भी यह प्रथा चल रही थी ।

छान्दोग्योपनिषद् (५, ३, १) और शतपथ ब्राह्मण (११, ६, २) को मिला कर पढ़ा जाय तो पता लगता है कि श्वेतकेतु, सोमशुष्म सात्ययज्ञ और याज्ञवल्क्य, राजा जनक को मिले । राजा जनक ने उन से धर्म्म सम्बन्धी प्रश्न पूछा जिस का उत्तर याज्ञवल्क्य ने तो कुछ २ दे दिया परन्तु उन के दोनों साथियों ने सर्वथा अशुद्ध उत्तर दिया । फिर श्वेतकेतु पाञ्चालों की परिषद् में गया और वहां भी राजा जैवलिप्रवाहण के प्रश्नों का उत्तर न दे सका ।

इस में सन्देह नहीं कि परिषदों के अतिरिक्त उस समय ऐसे विद्यालय भी थे जिन्हें वानप्रस्थियों ने जङ्गलों में ब्रह्मचारियों की शिक्षा के लिये खोल रखा था । ये ब्रह्मचारी अपने गुरुओं से विद्या ग्रहण करते हुए उन की सेवा भी करते थे, विशेष विद्या ग्रहण कर लेने पर वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर परस्पर में शास्त्रार्थ भी करते थे । परिषदों के विद्यार्थियों को भी अपने गुरुओं के साथ ही रहना पड़ता था, परिषदों में उपाध्यायों तथा विद्यार्थियों के लिये आश्रम तथा बड़े २ पुस्तकालय भी विद्यमान रहते थे । परिषदों के विद्यार्थियों को भोजनों के लिए मांगना नहीं पड़ता था क्योंकि परिषदों के चलाने के लिए राजा लोग बहुतसा धन दिया करते थे । हां वानप्रस्थी जो निज के विद्यालय चलाते थे उन के विद्यार्थी मांग २ कर भोजन लाते जिस में से अपने गुरु को खिलाते और आप भी खाते थे । परन्तु उस समय दारिद्र्यावस्था वर्तमान न थी जो इस समय विद्यमान है और न लोगों के आचार विचार भ्रष्ट थे अतः ब्रह्मचारियों को भिक्षा प्राप्त करने में कुछ भी कष्ट नहीं होता था । ब्रह्मचारियों का उस समय इतना मान्य था कि जब भिक्षा का समय

निकट आजाता था तो आर्य्य देवियां भोजन लिए हुए खड़ी हो जातीं और ब्रह्मचारियों की प्रतीक्षा करने लगती थीं । ग्रामों के सर्व स्त्री पुरुष ब्रह्मचारियों के आचारों के लिए अपने को उत्तरदाता समझते थे । परिषदों तथा वानप्रस्थियों के स्थापित गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों को विद्याध्ययन करते हुए तपस्वी बनना पड़ता था जिससे शरीर बलिष्ठ और आत्मा दृढ़ हो जाता था और ब्रह्मचर्य्य समाप्त करने पर विद्यार्थी जीवन-युद्ध के उपयुक्त बन जाता था । प्रत्येक ब्रह्मचारी को कम से कम २५ वर्ष की अवस्था तक गुरुकुल में रहना पड़ता था ॥

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि उस समय की परिषदों तथा गुरुकुलों में पढ़ाया क्या जाता था ॥

अनेक पश्चिमी विद्वान् कहा करते हैं कि प्राचीन आर्य्य आध्यात्मिक स्वप्नों में अपना जीवन व्यतीत करते थे बारह वर्षों तक केवल व्याकरण पढ़ा करते थे तदनन्तर कुछ ज्योतिष भी पढ़ लेते थे ताकि यज्ञ का समय नियत करने की विधि ज्ञात हो जाय॥

परन्तु यदि अनुशीलन किया जाय तो ज्ञात हो जायगा कि प्राचीन आर्य्यों के विरुद्ध उक्त कथन सर्वथा ही निर्मूल है । प्राचीन आर्य्य आध्यात्मिक स्वप्न नहीं देखते थे प्रत्युत योग द्वारा अपने आत्मा से परमात्मा को साक्षात् करके ब्रह्मानन्द का सुख अनुभव करते थे । प्रायः प्रत्येक आर्य्य बालक ब्रह्मचारी बन साङ्गोपाङ्ग वेदों तथा उपवेदों की शिक्षा धारण करने का यत्न करता था जिन का वर्णन आर्ष-ग्रन्थों में अनेक जगह मिलता है ।/ब्राह्मणों में अनेक प्रकार की विद्याओं की बातें आती हैं । देखिए छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ७ खण्ड १ वहां महर्षि सनत्कुमार के पूछने पर ऋषि नारद ने बतलाया है " सहोवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳसर्पदेवजनविद्यामेतद् भगवोऽध्येमि *

हे भगवन् ! मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास पुराण, वेदों के अर्थ विधायक ग्रन्थ, पितृविद्या, राशिविद्या, दैवविद्या, निधिविद्या, वाकोवाक्य विद्या, एकायन-विद्या, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्राविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पदेवजन विद्याओं को अध्ययन किया है । यहां " अध्येमि " क्रिया स्पष्ट बतला रही है कि नारद ने इतनी विद्याएं गुरु से पढ़ी थीं । शतपथ के ग्यारहवें काण्ड में लिखा है कि

---

* इनकी व्याख्या इस पुस्तक के पृष्ठ ६३ तथा ६४ में देखिये

पढ़ने योग्य विषय ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, अनुशासन-विद्या, पदार्थविद्या, वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण नाराशंसी और गाथाएं हैं ॥)

कतिपय योरोपीय विद्वानों से यत्किञ्चित् अधिक आलोचना कर जब वीबर साहब ने यह पता लगाया कि शतपथ ब्राह्मण में कई विद्याओं के नाम हैं और कई विद्याओं की संक्षिप्त व्याख्याएं भी हैं तो लाचार होकर कहने लगे कि हां कतिपय भिन्न भिन्न विषय तो शतपथ में वर्णित हैं परन्तु वे शतपथ के भागमात्र हैं उन विषयों के स्वतन्त्र विस्तृत व्याख्यान कभी भी विद्यमान नहीं थे। परन्तु वीबर साहब का यह कथन कथन ही मात्र है तर्क के सन्मुख इस की सत्यता सिद्ध नहीं हो सक्ती। यदि इन विषयों का परिज्ञान पहले उपस्थित न होता तो शतपथ ब्राह्मण के काण्डों में भी उन की व्याख्या कैसे हो सक्ती। यदि किसी पुस्तक का एक अध्याय गणित के विषय में हो तो इस से यह सिद्ध नहीं होता कि संसार में गणित पर और कोई पुस्तक ही नहीं है। यदि कुछ सिद्ध होता है तो यह कि इस पुस्तक के बनने से पूर्व गणित की विद्या उपस्थित थी। इस के अतिरिक्त जैसा कि हम छान्दोग्य से प्रमाण उद्धृत कर दिखला आए हैं उस से तो निस्सन्देह ज्ञात होता है कि ऋषि नारद ने उतनी विद्याएं पढ़ी थीं। तो क्या जिस समय छान्दोग्य बनने लगा था उस समय ऋषि नारद उन २ विद्याओं को पढ़ने लगे थे ?।

ब्राह्मण-ग्रन्थों के पूर्व किन २ विद्याओं का प्रचार था इस विषय में जो लेख हम लिख आए हैं * उस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि प्राचीन आर्य्य केवल व्याकरण और ज्योतिष ही नहीं प्रत्युत अनेक ऐसी विद्याएं भी पढ़ते थे जिन का पुनः प्रचार अभी तक योरोपदेश में नहीं हुआ। आज कल योरोप वा अमेरिका में जितनी विद्याएं पढ़ाई जाती हैं वे सब की सब अपरा विद्याओं के अन्तर्गत हैं। जहां तक ज्ञात है परा विद्या का जानने वाला एक भी पुरुष उक्त देशों में विद्यमान नहीं है। परा उस साधन का नाम है जिस से जीवात्मा परमात्मा को साक्षात करलेता है।

अब हम संक्षेपतः यह दर्शाते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थोंके समय में ज्योतिर्विद्या की क्या अवस्था थी।

ज्योतिर्विद्या गोपथ (२, ४. १०) में सूर्य्य, पृथिवी, दिन तथा रात्रि के विषय में लिखा है:—

---

* देखिए ब्राह्मणग्रन्थों के समय का साहित्य विषय पृष्ठ ५१ से ६८ तक।

"तद्यदेनं पुरस्तादुदयतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तं गत्वाथात्मानं विपर्यस्यते रात्रिमेवाधस्तात् कृणुते अहः परस्तात् । स वा एष न कदाचनास्तमयति, नोदयति, नहवै कदाचन निम्लोचति"।

पुरस्तात् अर्थात् सन्मुख रहने के कारण सूर्य्य उदय होता है ऐसा मानते हैं और उस उदय काल के अन्त होने पर अपने को अस्त करता है और रात्रि होती है (ऐसा माना जाता है) (परन्तु वास्तविक बात यह है कि पृथिवी जो अपने व्यास पर घूमती है उस से पृथिवी का आधा भाग जब सूर्य्य की ओर से हट जाता है अर्थात् सुर्य्य ऊपर रह जाता और वह भूभाग नीचे आजाता है तब) अधस्तात् अर्थात् पृथिवी के एक भाग के नीचे की ओर आने से उस भाग पर सूर्य्य रात्रि कर देता है और (पृथिवी की गति के कारण पुनः वही भाग जब सूर्य्य के सन्मुख आता है तब) परस्तात् अर्थात् पृथिवी के उसी भाग के सूर्य्य के सन्मुख आने पर उस भाग पर सूर्य्य दिन कर देता है। वास्तव में वह सुर्य्य न कभी अस्त होता और न उदय होता है और न वह कभी (निम्लोचति) चलता है ।

इसी प्रकार ऐतरेयब्राह्मण (३, ४, ६,) में सूर्य्य, पृथिवी दिन तथा रात्रि के विषय में लिखा है:—

"स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति । तं यदस्तमेतीति मन्यन्ते अह्न एव तदन्तामित्वाथात्मानं विपर्यस्यते रात्रीमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तात् । अथयदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेवतदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते अहरेवावस्तात् कुरुते रात्रीं परस्तात् । सवा एष न कदाचन निम्रोचति नहवै कदाचन निम्रोचति"

वह (सूर्य्य) न कभी अस्त होता और न उदय होता है। (अह्नएव तदन्तमित्वा........) दिन की समाप्ति को प्राप्त होकर जब सूर्य्य अपने को अस्त करता है। तब वह सूर्य्य अस्त होता है ऐसा माना जाता है (परन्तु वास्तव में) अवस्तात् अर्थात् पृथिवी के एक भाग के नीचे की ओर आजाने से (पृथिवी जो अपने व्यास पर घूमती है उस से उस का एक भाग कभी सूर्य्य के सन्मुख और कभी वही भाग सूर्य्य से परे अर्थात् उल्टी और वा नीचे की ओर आजाता है) वहां सूर्य्य रात्रि करता है और फिर पृथिवी की गति के कारण जो भाग सूर्य्य के सन्मुख आता है उस भाग पर (पुरस्तात्) आगे वा सन्मुख आने के कारण दिन करता है। तब

उस भाग पर के लोग मानते हैं कि प्रातः हुआ रात्रि की समाप्ति हो जाने के कारण। फिर विपर्यय होता है। अवस्तात् अर्थात् नीचे रहने की दशा के पश्चात् (अर्थात् उसी भू-भाग के नीचे से ऊपर वा सुर्य्य के सन्मुख आने पर) वहा सुर्य्य दिन कर देता है और जो भू भाग सुर्य्य के आगे वा सन्मुख था उस भाग के पुरस्तात् अर्थात् सन्मुखावस्था की समाप्ति पर वहां रात्रि कर देता है (परन्तु वास्तविक बात यह है कि) वह (सूर्य्य) कभी भी नहीं (निम्रोचाति) चलता, वह सुर्य्य निश्चय कभी भी नहीं (निम्रोचाति) चलता है।

तैत्तिरीय आरण्यक के प्रथम प्रपाठक में जहां क्षाक्षि तथा वैशम्पायनादि ज्योतिषियों का मत आङ्कित है वहा आरोग और भ्राजादि भिन्न २ सुर्य्यों का विषय वर्णित है जिस से सिद्ध होता है कि उस प्राचीन काल में लोग ग्रहों और ताराओं के भेदों को भली भांति जान चुके थे।

शतपथ ब्राह्मण में कृतिका, रोहिणी, मृगशीर्ष फाल्गुणी, हस्त, चित्रादि नक्षत्रों का वर्णन है।

अनेक प्राचीन ग्रन्थों में वेद के " नक्षत्र-दर्श " और " गणक " शब्द आए हैं जो कि ज्योतिषी के बोधक हैं।

छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ७ में जहां महर्षि सनत्कुमार और ऋषि नारद का सम्वाद है वहां उक्त महर्षि के पूछने पर कि नारद ने क्या क्या पढ़ा है, नारद ने बतलाया है कि उन्हों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद आदि आदि तथा नक्षत्र विद्या (ज्योतिष-शास्त्र) तथा अन्यान्य कई विद्याएं (जिन के नाम वहां छान्दोग्य में लिखे हुए हैं) पढ़ा है। इस से मालूम होता है कि छान्दोग्योपनिषद् के समय से पूर्व प्राचीन आर्य्यों ने ज्योतिष-शास्त्र में इतनी उन्नति करली थी कि वे इस शास्त्र को एक पृथक् विद्या अर्थात् नक्षत्र-विद्या के नाम से प्रचरित कर सकें थे।

यद्यपि उक्त प्रकार ब्राह्मणों के कई स्थलों में ज्योतिर्विद्या सम्बन्धी वर्णन आए हैं और इस विद्या का उल्लेख वेदों में भी विद्यमान है जैसा कि हम इस ग्रन्थ के प्रथमाध्याय में लिख आए हैं तथापि पेरिस का ज्योतिषी बायट तथा जर्मन प्रोफ़ेसर लैसन लिखते हैं कि नक्षत्रों का विषय आर्यों ने चीनियों से सीखा था। परन्तु प्रोफ़ेसर ह्विटनी, बायट के लेखों का खण्डन करते हुए लिखता है कि चीनी " सीऊ " शब्द जिस का अर्थ बायट साहब " नक्षत्र " करते हैं सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि "सीऊ"

का अर्थ single star अर्थात् एक तारामात्र है और नक्षत्र का अर्थ group of stars अर्थात् ताराओं का समूह है।

प्रोफ़ेसर वीबर कहते हैं कि प्राचीन आर्य्यों ने ज्योतिर्विद्या चीनियों से नहीं सीखी यह तो ठीक है परन्तु यह विद्या उन्होंने विदेशियों से और सम्भव है कि कदाचित् बेबिलोनिया वालों से सीखी थी। इस कथन की पुष्टि अमेरिका के प्रोफ़ेसर ह्विटनी करते और कहते हैं कि "सम्भव है कि प्राचीन आर्य्यों ने बेबिलोनिया वालों से ही ज्योतिर्विद्या सीखी हो क्योंकि आर्यों की मानसिक-प्रकृति ऐसी न थी कि वह आकाश का निरीक्षण कर सके और उस राशिचक्र को बतला सके जिन के सन्मुख चन्द्रमा भ्रमण करता है"। प्राचीन आर्यों की मानसिक-शक्ति कैसी थी अब इस बीसवीं शताब्दि में सिद्ध हो चुकी है और योरोपीय विद्वान् ज्यों २ प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों को अवलोकन करेंगे त्यों २ प्राचीन आर्य्यों के लिए पूजनीय-भाव उन के हृदय में उत्पन्न होते जांयगे। हां प्रोफ़ेसर वीबर और प्रोफ़ेसर ह्विटनी के उक्त कथन से यह स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि अधिकतर योरोपीय विद्वान् जब कभी प्राचीन आर्यावर्त के विषय में विचार करते हैं तो उन के मन में कुछ न कुछ पक्षपात अवश्य आजाता है जिस से प्रेरित होकर वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि प्राचीन आर्य विदेशी जातियों के शिष्य थे अतः आधुनिक भारतीय पण्डित जो उत्साहपूर्वक यह कहते हैं कि प्राचीन आर्य्य जगद्गुरु थे मिथ्या है प्रोफ़ेसर मैक्समूलर लिखते हैं कि "चन्द्रमा के राशिचक्र में जो २७ नक्षत्र हैं इन के विषय में कहा जाता है कि इन नक्षत्रों का ज्ञान आर्य्यों ने बेबिलोनिया वालों से सीखा परन्तु बेबीलोनिया के "क्यूनईफ़ार्म" नामक अति प्राचीन लेख के देखने से विदित होता है कि बेबीलोनिया वालों का राशिचक्र चान्द्र नहीं प्रत्युत सौर्य्य था, बेबीलोनिया के किसी अन्य प्राचीन लेख से भी चन्द्रमा के राशिचक्र का पता नहीं लगता" * फिर कैसे माना जाय कि प्राचीन आर्य्यों ने चन्द्रमा के राशिचक्र का ज्ञान बेबी-लोनिया वालों से प्राप्त किया था?

डेविस नामक विद्वान् लिखता है कि पाराशर (व्यास के पिता नहीं प्रत्युत उस नाम के एक ज्योतिषी) के नाम से जो ज्योतिष का ग्रन्थ आजकल प्रचरित है उस की ज्योतिष सम्बन्धी घटनाओं की गणना से बोध होता है कि पाराशर नामक ज्योतिषी ईसा के जन्म से १३९१ वर्ष पूर्व वर्तमान था।

---

*"इन्डिया, वाट इट कैन टीच अस" नामक ग्रन्थ (१८८३ का मुद्रित) पृष्ठ १२६

बेली नामक ज्योतिषी अपने "प्राचीन ज्योतिष् का इतिहास" नामक ग्रन्थ में लिखता है कि यद्यपि आर्य्यों का ज्योतिष-शास्त्र इस समय भी महोन्नति है परन्तु याद रखना चाहिए कि वर्तमान ज्योतिष उन के प्राचीन महोन्नत ज्योतिष का शेष भागमात्र है

कैसिनी, बेली, जेंटील, प्लेफ़ेयर नामक योरोपीय ज्योतिषी लिखते हैं कि हिन्दुओं (आर्य्यों) ने ज्योतिष सम्बन्धी ऐसी ऐसी घटनाएं बतलाई हैं जो ईसा के जन्म के ३००० तीन सहस्त्र वर्ष पहले की हैं और उन के वे आविष्कार उस समय की भी उन की ज्योतिष सम्बन्धी अत्युच्च-योग्यता बतलाते हैं *

फ्रांस के राजा चतुर्दश लूई का लाबर नामक राजदूत १८८७ ई० में स्याम देश से सूर्य ग्रहणों के कई चित्र लाया था । और दक्षिण भारत के कर्नाटक देश के तिरवालोर स्थान से पाटोइल्ट तथा जेंटील नामक योरोपियनों ने सूर्य्य ग्रहणों के कई चित्र योरोप में भेजे थे । योरोप के प्रसिद्ध ज्योतिषी बेली ने जब उन चित्रों में देखा कि एक सूर्य्य ग्रहण उन के समय से ४३८३ वर्ष पूर्व का है तो स्वयम् गणना करने लगे और गणना करने से पता लगा कि उक्त ग्रहण की गणना में आर्य्यों ने एक मिनट की भी भूल नहीं की है । *

बेली के मतानुसार ईसा के जन्म से ३००० तीन सहस्त्र वर्ष पहले जब कि आर्य्य ज्योतिषी इतने विद्वान् थे तो समझना चाहिए कि उस समय से कितने दिन पहले से आर्य्य पण्डित ज्योतिष और इस से सम्बन्ध रखने वाली रेखा-गणित विद्या को जानते होंगे।

कलियुग का समयारम्भ लिखते हुए आर्य्य ज्योतिषियों ने बतलाया है कि उस समय प्रायः सब ग्रह प्रायः एक सीध में आगए थे । बेली ने जब ग्रहों की गत्यनुसार उस समय की गणना की तो बतलाया कि कलियुग का आरम्भ ईसा के जन्म से पहले ३१०२ तीन सहस्त्र एक सौ दो वर्ष २० फ़रवरी को २ बज के २७ मिनट तथा ३० सेकंड पर हुआ था ।

सूर्य्य-सिद्धान्त का कर्त्ता अपने ग्रन्थ के निर्माण-काल को अपने ग्रन्थ के मध्याह्वाध्याय श्लोक २२ तथा २३ में इस प्रकार लिखता है:—

"कल्पादस्माच्च मनवः षट्व्यतीताः ससन्धयः
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनोगतः
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमे तत्कृतं युगम्
अतः कालंप्रसंख्याथ संख्यामेकत्र पिण्डयेत्"

---

* थियोगोनी आफ दि हिन्दूज़ पृष्ठ ३२ † थियोगोनी आफ दि हिन्दूज पृष्ठ ३६, ३७

अर्थात् वर्तमान कल्प वा सृष्टि के सन्धि सहित छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। वैवस्वतमन्वन्तर के त्रिघ्न (३+९) अर्थात् २७ चतुर्युगी भी बीत चुके हैं। अठाइसवीं चतुर्युगी का कृत युग (सतयुग) भी व्यतीत हो गया है।

वर्तमान विक्रम सम्वत १९६७ है और कल्यब्द ५०११ है और उक्त श्लोकानुसार सूर्य्यसिद्धान्त इस चतुर्युगी के त्रेता के आरम्भ में बना अतः सूर्य्यसिद्धान्त के बने त्रेता+द्वापर+कलियुग के ५०१० वर्ष अर्थात् १२९६०००+८६४००० ५०१० अर्थात् कुल २१६५०१० वर्ष व्यतीत हुए।

अतः सिद्ध हुआ कि जिस समय योरोप में एक भी ज्योतिष का ग्रन्थ नहीं बना था उस समय भी आर्य्यावर्त में बड़े बड़े ज्योतिषी वर्तमान थे।

राजनियम—योरोप में आज कल प्रायः राजनियम के रोमन क्रम का प्रचार है। रोमन-राजनियम क्रम का एक सूत्र यह है कि राजा राजनियम से उच्च है अर्थात उस के अन्याय को रोकने की शक्ति राजनियम में नहीं है, प्रजा राजनियम के आधीन है और राजनियम राजा के आधीन है।

परन्तु प्राचीन आर्य्यों का राज्यनियम विषयक आदर्श इस से बहुत उच्च था वृहदारण्यकोपनिषद् (२, ४, १४,) में लिखा है:—

"तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजतधर्म्मं तदेतत् क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म्मस्तस्माद्धर्म्मात्पर नास्त्यथो अबलीयान् बलीयाꣳसमाशꣳसते धर्म्मेण यथा राज्ञैव यो वै सधर्म्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्म्मंवदतीति धर्म्मं वा वदन्तꣳसत्यं वदतीत्येतद्ध्येवैतदुभयं भवति" अर्थात् उसने कल्याण रूप धर्म्म (वा नियमों को बनाया, वही धर्म्म क्षत्र का भी क्षत्र है अर्थात् (शासन करने वाले राजपुरुष पर भी शासन करता है) क्योंकि क्षत्र धर्म्म है अतः धर्म से बढ़ कर (राजपुरुषादि) कोई भी नहीं है, धर्म्म के बल से निर्बल शरीर वाला भी बड़े २ बलवानों को वश में रखता है जिसप्रकार कि (शरीर से निर्बल होनेपर भी धार्म्मिक होने से राजा के द्वारा बलवानों का शासन होता है। अतः जो राजा है वह धर्म्म है और वह धर्म सत्य है इसी कारण जो सत्यभाषण करता है उस के विषय में कहा जाता है कि वह धर्म कहता है (इसी प्रकार) जो धर्म बोलता है उस के विषय में कहा जाता है कि वह सत्य कह रहा है तात्पर्य्य यह है कि जो धर्म है वह सत्य है और जो सत्य है वह धर्म है, धर्म और सत्य दोनों पर्य्यायवाची शब्द हैं।

अतः सिद्ध हुआ कि यह धर्म ही है जो राजा और प्रजा सब को नियम में रखता है, इन में से जो कोई धर्म को तोड़ता है वह दुख का भागी बनता है।

राजनियमों के तोड़ने का साहस तो कोई राजा क्या कर सक्ता था, यदि कोई राजा अपनी प्रजा को पूर्ण धार्म्मिक और सुखी बनाने की योग्यता नहीं रखता था तो उस के यहां महर्षि गण ठहरना भी पाप समझते थे जिस कारण राजा की घोर निन्दा होती और वह पतित समझा जाता था। यही कारण हैं कि जब केकय देश के राजा अश्वपति (देखिए छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठक ५, खण्ड ११, प्र० ५) के यहां प्राचीन शाल, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन, बुडिल तथा उद्दालक नामक महर्षि आए तो अश्वपति ने उन की यथोचित पूजा करवाई और फिर अपने यहां ठहरने के लिए प्रार्थना करते हुए कहा कि "नमेस्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणोवै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद् भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु मे भगवन्त इति" हे महात्मा पुरुषो! मेरे राज्य में न चोर, न कायर, न मद्यपी, न अग्निहोत्र न करनेवाला, न अविद्वान्, न व्यभिचारी है, फिर व्यभिचारिणी तो कहां? मैं नियम पूर्वक यज्ञ करता हूं, एक एक ऋत्विक् को जितना २ धन दूंगा उतना २ धन आप में से प्रत्येक महानुभावों को दूंगा, अतः हे भगवन्त आप लोग कृपया मेरे यहां निवास करें।

जिन राजनियमों की पालना करता हुआ राजा अपनी प्रजा को उक्त प्रकार का बना सक्ता है उन राजनियमों की प्रशंसा हम तो क्या, विद्वान् मात्र मुक्तकण्ठ से किया करेंगे। इस से बढ़कर भी राजनियमों का आदर्श हो सक्ता है? इस विषय में पुनः एक पृथक् अध्याय ही लिखा जायगा।

रेखा-गणित—रेखा गणित की विद्या भी अति प्राचीन काल से आर्य्यों को ज्ञात है। ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १३०, मन्त्र ३ में "परिधिः, (Circumference) शब्द आया है। पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है। "कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत। छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे" इस मन्त्र के द्रष्टा यज्ञ प्रजापति ऋषि ने तथा इसी प्रकार के मन्त्रों के भावों के प्रचारक अन्यान्य ऋषियों तथा उन के शिष्य प्रशिष्यों ने जो पुरुषार्थ किया होगा उस से निश्चय है कि रेखागणित की विद्या प्राचीन में भली भांति प्रचरित हो गई होगी।

यद्यपि ब्राह्मणग्रन्थों में वेदियों के विषय में उल्लेख हैं तथापि रेखागणित के साध्यों के विषय में कोई लेख अभी तक हमें नहीं मिला है। सम्भव है कि रेखाग-

णित का विषय ब्राह्मण ग्रन्थ का विषय न हो इस कारण उस विषय पर कोई विशेष सम्मति ब्राह्मण ग्रन्थों के बनाने वालों ने प्रकट न की हो । परन्तु जब कि साम-ब्राह्मण के छान्दाग्य भाग में महर्षि सनत्कुमार तथा ऋषि नारद के सम्वाद में स्पष्ट लिखा है कि ऋषि नारद ने " नक्षत्र-विद्या " अर्थात् ज्योतिषशास्त्र को पढ़ा है तो कैसे सम्भव है कि नक्षत्र-विद्या के ज्ञाता नारद ने रेखागणित को नहीं पढ़ा होगा । कोई भी पुरुष मङ्गल, बुध, बृहस्पति, पृथिव्यादि ग्रहों की गति, चान्द्रचक्र की परिधि, राशियों के उदय अस्त, सूर्य्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, धूमकेतुओं के उदय अस्त आदि ज्योतिष सम्बन्धी बातों को भली भांति समझ ही नहीं सक्ता जब तक कि वह यह न जानता हो कि एक वृत्त का सम्बन्ध दूसरे वृत्त के साथ कैसे निर्णय किया जाता है, केन्द्र और परिधि का क्या सम्बन्ध होता है इत्यादि अस्तु ।

तैत्तिरीय-संहिता नामक ग्रन्थ (५. ४. ११) में लिखा है कि वेदियों को किन २ आकारों का बनाना चाहिये । बौद्धायन और आपस्तम्ब-सूत्रों में उन चि-त्तियों तथा इष्टकाओं का सविस्तर वर्णन है जिन से भिन्न २ प्रकार के यज्ञकुण्ड बनाए जाते थे । उक्त पुस्तकों में यज्ञ कुण्डों के अनेक आकार लिखे हुए हैं जिन में कति-पय निम्नलिखित हैं:—

(१) चतुराश्रयश्येन (अर्थात् श्येन पक्षी के आकार का)
(२) वक्रपक्ष व्यस्तपुच्छ श्येन (अर्थात् श्येन पक्षी के टेढ़े पांख और फैले हुए पुच्छ के आकार का कुण्ड)
(३) कङ्कचित (कङ्कपक्षी के आकार का कुण्ड)
(४) अलजाचित (अलजा पक्षी के आकार का कुण्ड)
(५) प्रागचित (अर्थात् समभुज त्रिभुज का आकार)
(६) उभयतः प्रागचित (अर्थात् समभुज त्रिभुज के आधार पर दूसरा स-मभुज त्रिभुज बना हुआ ।
(७) रथचक्रचित (अर्थात् गोलाकार)
(८) चतुराश्रय द्रोणचित (चतुष्कोण पात्र के आकार का)
(९) परिमण्डल द्रोणचित (गोल बर्तन के आकार का)
(१०) कूर्म्मचित (कूर्म्म कछुए के आकार का कुण्ड) इत्यादि इत्यादि प्रायः १६ प्रकार के कुण्डों का वर्णन है ।

ऊपर लिखित (१) चतुराश्रय-श्येन कुण्ड का क्षेत्रफल ७॥ वर्ग पुरुष हुआ करता था । उन ७॥ वर्गों में से प्रत्येक वर्ग की एक भुजा की लम्बाई एक पुरुष हुआ करती थी । पुरुष का अर्थ उतनी लम्बाई से है जितनी लम्बाई कि एक पुरुष के हाथ उठाए हुए खड़े रहने पर उस के पैर से हाथ की अंगुलियों के अन्त तक हुआ करती है । जब कभी उस चतुराश्रयश्येन कुण्ड के स्थान में प्रागचित (समभुज त्रिभुज-कुण्ड) अथवा रथ चक्राचित (गोलकुण्ड) वा कूर्म्मचित (कछुए के आकार का कुण्ड) बनाना पड़ता था तो चतुराश्रयश्येन कुण्ड के स्थान को काट कूट कर घटाते वा बढ़ाते नहीं थे प्रत्युत उसी स्थान में अर्थात् उसी ७॥ वर्ग पुरुष-स्थान में दूसरे कुण्ड को बना देते थे । कभी २ ऐसा भी होता था कि किसी विशेषाकार कुण्ड के बनाने में उक्त ७॥ वर्ग पुरुष-क्षेत्र में एक वर्ग पुरुष वा दो वर्ग पुरुष जोड़ देते थे परन्तु ७॥ वर्ग पुरुष-क्षेत्र को किसी भी दशा में न्यून नहीं करते थे ।

क्योंकि आकारों में उक्त प्रकार के परिवर्तन तब तक नहीं हो सक्ते जब तक कि त्रिभुज, वृत्त, चतुर्भुज तथा अर्द्ध वृत्तादि के परस्पर सम्बन्ध ज्यामिति के अनुसार ज्ञात न हों अतः स्पष्ट सिद्ध है कि आर्ययाज्ञिकों को ज्यामिति की विद्या अवश्य ही जाननी पड़ती थी । प्रसिद्ध डाक्टर थिबो लिखते हैं कि "याज्ञिकों को यज्ञ कुण्डों के निर्माण के लिए जानना पड़ता था कि एक वर्ग (Square) दो वा तीन निश्चित वर्गों के बराबर कैसे बनाया जाता है, अथवा दो नियत वर्गों के अन्तर से जो वर्ग बनेगा वह किस प्रकार बनाना चाहिये, नियत आयतों (Oblong) को वर्गों के आकार में और नियत वर्गों को आयतों के आकार में किस प्रकार परिणत करना पड़ता है, निर्मित त्रिकोणों (Triangles) के बराबर वर्ग वा आयत किस प्रकार बन सक्ते हैं, एक वृत्त (Circle) एक निश्चित वर्ग (Square) के लग भग बराबर कैसे बन सक्ता है" ।

प्रचरित यूक्लिड की ज्यामिति (ज्यामेट्री) जो आज कल स्कूलों में पढ़ाई जाती है उस के प्रथमाध्याय के ४७ सैंतालीसवें साध्य के विषय में कहा जाता है कि इस साध्य को प्रकट करने वाला यूनान का पिथैगोरस नामक विद्वान् है परन्तु योरोपीय विद्वानों को और विशेष कर डाक्टर थिबो को बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि उन्होंने उसी साध्य को सुल्वसूत्र के भीतर वर्णित पाया । डाक्टर थिबो कहते हैं कि पिथैगोरस के जन्म से कम से कम दो शताब्दि--पूर्व अर्थात् ईसा के जन्म से प्रायः ८०० वर्ष

पूर्व सुल्वसूत्र भारत में प्रचरित था । बी, श्रोडर नामक योरोपीय विद्वान् लिखता है कि पिथैगोरस ने ज्यामिति की अनेक बातें भारत से सीखी थीं, अस्तु ।

उक्त ४७ वां साध्य सुल्वसूत्र के निम्नलिखित दो सूत्रों में हैं:—

[१] किसी वर्ग (Square) के कर्ण (Diagonal) पर जो वर्ग बनाया जाता है वह उस वर्ग से द्विगुण होता है ।

[२] एक आयत (Oblong) के कर्ण (Diagonal) पर का वर्ग उस आयत के दो असमान बाहुओं (Sides) पर के वर्गों के बराबर होता है ।

इसी तरह रेखागणित की अनेक अन्यान्य बातें भी उक्त सुल्वसूत्र में पाई जाती हैं और यह बात प्रसिद्ध है कि सुल्वसूत्र कल्पसूत्र का भाग है और कल्पसूत्र यज्ञ कर्म्म से बहुत सम्बन्ध रखता है अतः डाक्टर थिबो का यह कथन कि जो जो भारतीय विद्याएं आर्यों के धर्म से सम्बन्ध रखती हैं वे अवश्य ही भारत में उत्पन्न हुईं, योरोपियनों को भी मानने के लिये बाध्य करता है कि भारत वासियों ने ज्यामिति की विद्या विदेशियों से नहीं सीखी थी ।

बीजगणित—बीज-गणित आर्य्यों ने यूनानी वा अन्यों से सीखा अथवा स्वयम् इस के मूल को वेद में देख कर इस के नियमों को प्रचरित किया इस विषय पर अब विवाद का स्थान नहीं है क्योंकि आर्य विद्याओं के समीक्षकों के एक मुखिया प्रोफ़ेसर मोनियर वीलियमस ने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार कर लिया है कि "बीजगणित तथा रेखागणित का आविष्कार तथा ज्योतिष के साथ उन का प्रथम प्रयोग हिन्दुओं (आर्य्यों) के ही द्वारा हुआ" * बीजगणित के अनेक ग्रन्थ इस समय भी भारत में प्रचरित हैं । बीजगणित में आर्यों ने यहां तक उन्नति करली थी कि ज्यामिति के अनेक साध्य भी वह बीजगणित द्वारा ही सिद्ध कर लेते थे ।

अङ्कगणित—इस विद्या का भी मूल वेदों में देख कर आर्य्यों ने इस के नियम बनाए । यजुर्वेद अध्याय १८ मन्त्र २४ तथा २५ आदि में बीजगणित की विद्या के वर्णन के साथ अङ्कगणित की विद्या भी वर्णित है । रेखागणित तथा ज्योतिष के कठिन नियमों के बताने वाले प्राचीन आर्य्यों के लिए अङ्कगणित के नियमों का बतलाना कुछ कठिन नहीं था । अरब वालों ने यह विद्या आर्यों से ही सीखी थी और इसी कारण इस विद्या को इल्महिन्दसा अर्थात् हिन्द या भारत की विद्या

* To the Hindus is due the invention of Algebra and Geometry and their application to Astronomy (Indian Wisdom. P. 185.)

कहते हैं । योरोप में अर्ब वालों की शिक्षा के पूर्व अङ्कगणित का प्रचार बहुत कम था अर्बों ने अङ्कगाणित का योरोप में अच्छा प्रचार किया अतः योरोप के वर्तमान अङ्कगणित की माता भारतीय अङ्कगणित की विद्या ही है ।

व्याकरण-शास्त्र और भाषा-विज्ञान—व्याकरण-शास्त्र और भाषा-विज्ञान में प्राचीन आर्यों ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी ऋषि पाणिनी जिन्होंने अष्टाध्यायी बनाई है भाषा-विज्ञान और व्याकरण में संसार के विद्वानों में एक अपूर्व प्रतिष्ठा और गौरव रखते हैं । जिस वैज्ञानिक शैली पर अष्टाध्यायी लिखी हुई है उस शैली पर आज तक व्याकरण सम्बन्धी पुस्तक संसार के किसी भी अन्य भाग में नहीं लिखी गई । वास्तव में यह सच है कि प्राचीन आर्यों ने ही व्याकरण को एक विज्ञान बनाया था । योरोप में विद्या सम्बन्धी सब से बड़ा आविष्कार यह समझा जाता है कि एक भाषा के लाखों शब्द गिनती की धातुओं में परिवर्तित किए जावें । जो कोई पाणिनी का धातु पाठ पढ़ता है वह जानता है कि यह आविष्कार भारतवर्ष में आज से सहस्रों वर्ष पूर्व हो चुका था । वास्तव में यह आविष्कार पाणिनी के समय से भी पूर्व का है क्योंकि पाणिनी अपने उणादिकोषादि ग्रन्थों में कई प्राचीन वैय्याकरणों के भी प्रमाण देते हैं ।

बोप और योरोप के अन्यान्य विद्वानों ने संस्कृत को पढ़कर ही अनेक शब्दों के वास्तविक धातुओं का पता लगाया है । परन्तु पाणिनी का धातुपाठ उस समय बना था जिस समय योरोप में सभ्यता और सुशिक्षा का चिन्ह भी प्रकट न था । हम पाणिनी की क्या प्रशंसा करें उन की प्रशंसा सारा संसार कर रहा है ।

जर्मनी का प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् वीबर जो आर्य्यग्रंथों की तीक्ष्ण समालोचना में भी संकोच नहीं करता विवश होकर पाणिनी की अष्टाध्यायी के विषय में निम्न-लिखित सम्मति प्रकट करता है:—

" हम एकाएक उस महान् भवन में प्रवेश करते हैं जिस का शिल्पी पाणिनी है और जो प्रत्येक प्रवेश करने वाले के हृदय में बलात्कार भक्ति और आश्चर्य्य के भाव न्यायतः उत्पन्न करता है, पाणिनी के व्याकरण में अन्य देशों की इसी प्रकार की पुस्तकों से यह विशेषता है कि यह व्याकरण भली भांति अन्वेषण कर भाषा की धातुओं तथा शब्दों की व्युत्पत्तियों को बतलाता है, इस के भावप्रकाश में एक सूक्ष्म याथार्थ्य है जो संक्षिप्त परन्तु गूढ़ रीति से दर्शा देता है कि विशेष २ प्रयोग किसी एक ही सूत्र से सिद्ध हो जाते हैं अथवा (इन की सिद्धि में) अन्यान्य

सूत्रों की भी अपेक्षा हें । पाणिनी ऐसा इस कारण कर सका है कि उस ने बीज-गणित के नियमानुसार पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध रखने वाली स्वपरिभाषाओं का सुप्रयोग किया है और क्योंकि उन सम्पूर्ण दृश्यों को जिन्हें भाषा प्रकट करती है उन के वर्णन में ये पर्याप्त हैं, ये अपने आविष्कर्त्ता (रचयिता) की आश्चर्य्यमय सूक्ष्मज्ञता तथा भाषा के सम्पूर्ण उपकरणों वा भण्डार में उस की गूढ़ व्याप्ति का परिचय दे रहे हैं " *

---

* We pass at once into the magnificent edifice which bears the name of Panini as its architect and which justly commands the wonder and admiration of every one who enters. Panini's Grammar is distinguished above all similar works of other countries, partly by its thoroughly exhaustive investigation of the roots of the language, and the formation of words; partly by its sharp precision of expression, which indicates with an enigmatical succinctness whether forms come under the same or different rules. This in rendered possible by the employment of an algebraic terminolgy of arbitrary contrivance, the several parts, of which stand to each other in the closest harmony, and which by the very fact of its sufficing for all the phenomena which the language presents, bespeaks at once the marvellous ingenuity of its inventor, and his profound penetration of the entire Material of the language. (Weber's Indian literature p. 216.)

चतुर्थ परिच्छेद

राजा, उस का अधिकार और कर्तव्य

तथा राज व्यवस्था ।

राजपदाधिकारी कौन हो सक्ता था–प्राचीन समय में राजा निष्प्रतिबन्ध नहीं होता था प्रत्युत राज्य प्रजातन्त्र होता था, राजतिलक–संस्कार और उस से शिक्षा राजा भी दण्डनीय होता था—रोमन राजव्यवस्था के साथ प्राचीन आर्य्य राज-व्यवस्था का सम्मेलन–न्यायविभाग और प्रबन्ध विभाग पृथक् २ थे–राजनीतिज्ञ भिन्न २ आचार्य और ऋषि—दण्ड सम्बन्धी नियम, क्या वे कठोर थे—ब्राह्मणों और शूद्रों के साथ एक ही प्रकार के बर्ताव—मृत्युदण्ड की कई आचार्यों की सम्मति में अनावश्यकता, उस की स्थानापत्ति, राजनियम शास्त्र का आशय, प्रायश्चित्त पर विचार व्यावहारिक राजनियम–दायभाग सम्बन्धी राजनियम–स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी राजनियम–सर्वसाधारण हित सम्बन्धी राजनियम–भूमि-कर सम्बन्धी राज नियम प्राचीन राजनियमों पर एक साधारण दृष्टि ।

राज पदाधिकारी कौन हो सक्ता था ?—

गौतम अपने धर्म्म सूत्र के अध्याय ८ सूत्र १, ४, ५, ६, ७ में लिखते हैं कि राजा (और ब्राह्मण) को वेदों का गम्भीर ज्ञानी बनना चाहिए क्यों कि संसार में धर्म्म की व्यवस्था इन्हें ही धारण करनी पड़ती है । गम्भीर ज्ञानी वह कहलाता है जो सांसारिक चक्रों से अभिज्ञ हो, वेदों को और उन के अङ्गों को अध्ययन किया हो, तर्कशास्त्र, इतिहास और पुराण (ब्राह्मण ग्रन्थ) में व्युत्पन्न एवं निपुण हो जो इन्हीं (उक्त वेदादि) को प्रामाणिक मानता हो और इन्हीं के आदेशानुसार अपना जीवन व्यतीत करता हो ।

शतपथ ब्राह्मण में लिखा है "राष्ट्रं वा अश्वमेधः" अर्थात् राज्य अश्वमेध यज्ञवत् है । प्राचीन याज्ञिक लोग विविध यज्ञों को जैसी श्रद्धा और भक्ति से करते थे वह प्रसिद्ध है । यज्ञ-कर्म्म में यदि कुछ भी व्यति-क्रम हो जाता था तो उस के लिए याज्ञिक अनेक प्रकार से पश्चात्ताप करते थे । याज्ञिक यज्ञ को अपनी सद्गति

था स्वर्ग प्राप्ति का साधन मानते थे। ठीक इसी प्रकार प्राचीन आर्य्य राजा राष्ट्र अर्थात् अपने राज्य के शासन को यज्ञ-कर्म्म समझता था, और विश्वास रखता था कि यदि मैं राष्ट्र के सर्व नियमों को भली भांति पालन करूंगा तथा कराऊंगा तो निस्सन्देह मेरी सद्गति हो जायगी। राजा के उक्त विश्वास को धर्म्म सूत्रकार वशिष्ठ इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

"राजा का प्रधान कर्म्म यह है कि वह सब प्राणियों की रक्षा करे। कर्तव्य पालन से उस का यह लोक तथा परलोक दोनों सफल हो जाते हैं (अर्थात् वह दोनों लोकों के सुखों का भागी बनता है)।

यद्यपि प्रजा राजा को पूज्यदृष्टि से देखती थी परन्तु राजा पाप करने से बहुत डरता था। सभा में राजसिंहासन पर आरूढ़ रहता हुआ समझता था कि यदि मुझ से अन्याय हो गया तो मैं भी पापी बनूंगा और उस का फल दुःख मुझे भी भोगना पड़ेगा। राजा जितने प्रकारों से दोषी माना जाता था उन में से एक प्रकार निम्नलिखित भी है।

(जब न्यायसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है तब अधर्म्म के चार भाग हो जाते हैं) उस अधर्म्म में से एक भाग अधर्म्म के कर्ता, दूसरा साक्षी, तीसरा न्यायसभा के न्यायकर्ताओं और चौथा भाग राजा को प्राप्त होता है। (बौद्धायन सूत्र १, १०, ८)

गौतम-सूत्र (अध्याय ११। सूत्र २, ३, ४, ५, ६) में लिखा है कि राजा का वचन और कर्म्म पवित्र होना चाहिए, उसे त्रयी-विद्या (वेद) तथा तर्क-शास्त्र में निपुण शुद्ध और जितेन्द्रिय होना चाहिए, उसे ऐसे साथियों (मन्त्रियों) से घिरा रहना चाहिए जिन में उत्तमोत्तम गुण तथा राज्य-शासन बनाए रखने की शक्तियां हों, उसे साधन सम्पन्न होना चाहिये तथा अपनी प्रजा के साथ निष्पक्ष वर्तना चाहिये और उन्हें लाभ पहुंचाना चाहिये।

आपस्तम्बसूत्र (प्रश्न २, पटल ११, खण्ड २८, सूत्र १३) में लिखा है कि यदि राजा अपराधी को दण्ड नहीं देता तो वह स्वयं पाप का भागी बनता है।

वासिष्ठसूत्र (अध्याय १९, । सूत्र ७) में लिखा है कि राजा को चाहिए कि अपने देश तथा उस में वसने वाली जातिओं तथा वंशों सम्बन्धी राजनियमों पर ध्यान देते हुए चारों वर्णों से उन के औचित्यपालन करावे।

वसिष्ठ सूत्र अध्याय १९। सूत्र १०। में लिखा है कि राजा को प्राचीन राज-नियम सम्बन्धी लेख तथा पूर्व निदर्शनों से अभिज्ञ होना चाहिए क्योंकि उन्हीं के अनुसार उसे अपराधियों का दण्ड निर्णय करना होगा।

अतः सिद्ध हुआ कि राजा वही हो सकता था जिस ने त्रयी-विद्या के ज्ञाताओं से ज्ञान-काण्ड, कर्म्म-काण्ड और उपासना-काण्ड (अर्थात् चारों वेदों) की शिक्षा पाई हो, अर्थात् वेदों में जो प्राकृतिक और आत्मिक विद्याएं हैं उन का ज्ञाता हो जिस ने सनातनधर्म्म-व्यवस्था (राजनीति) आत्मविद्या और सत्यासत्य के निर्णय के लिए लोगों से वार्ता किस प्रकार करनी चाहिये उस तर्क विद्या को सीखा हो, जो विविध प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं से आभिज्ञ हो जो वेदानुकूल अपने आ-चरण करने के कारण पूर्ण जितेन्द्रिय एवं शरीर मन और आत्मा से पवित्र और बलिष्ठ हो जिस के आधीन बड़े बड़े न्यायकर्त्ता विद्वान् विविध विषयों पर अपनी निष्पत्तियां प्रकाशित करते हों आदि।

प्राचीन समय में राजा निष्प्रतिबन्ध नहीं होता था—साधा-रणतः यह कहा जाता है कि प्राचीन समय में राजा निष्प्रतिबन्ध होता था अर्थात् उस की शक्तियों पर अन्य कोई भी दबाव डाल नहीं सक्ता था, वह जो चाहता था कर लेता था जिस पर अति क्रुद्ध होता उसे मार डालता और जिस पर साधारण क्रुद्ध होता उसे बन्दीगृह में डाल देता था। परन्तु यह कथन सर्वथा अनुक्त है। हम जो पूर्व लिख आए हैं उस से सिद्ध होता है कि राजा बन ही वह सका था जो धार्मिक और बड़ा विद्वान् हो और विशेषकर राजनीति से पूर्ण अभिज्ञ हो अर्थात् जो पुरुष इन गुणों से रहित हो वह राजा नहीं बन सक्ता था। इस से स्पष्टतया यह परिणाम निकलता है कि राजा का पुत्र यदि गुण रहित हो तो पैतृक-सम्पत्ति की भांति वह राजसिंहासन को प्राप्त नहीं कर सकता था।

अभिषेक-विधि अर्थात् राजा बनाने की रीति—जो शतपथ ब्राह्मण के राजसूय-यज्ञ प्रकरण में लिखी है वह बड़ी ही मनोरञ्जक है उस का ध्यान पूर्वक अवलोकन करने से बहुत सी ऐतिहासिक शिक्षाएं प्राप्त हो सकती हैं। उक्त प्रकरण में लिखा है कि यज्ञशाला के बीच हविर्धान के सन्मुख तथा आहवनी-याग्नि के पीछे जब राजसिंहासन रख दिया जाय और उस पर यथोचित बिछावन हो जाय तब अध्वर्यु उस पुरुष को जो राजा बनाने के योग्य माना गया है इस प्रकार घोषणा करते हुए राजशासनाधिकार से युक्त करेः—

"इयं ते राडिति राज्यमेवास्मिन्नेतद्धास्यथैनमासादयति यन्तासि यमन इति यन्तारमेवैनमेतद्यमनमासां प्रजानां करोति ध्रुवोसि धरुण इति ध्रुवमेवैनमेतद्धरुणमस्मिंल्लोके करोति कृष्यैत्वा क्षेमायत्वा रय्यैत्वा पोषायत्वेति साधवेत्वेत्ये वै तदाह" (शतपथ, काण्ड ५, अध्याय २, ब्राह्मण १, प्रवाक २५)

"इयं ते राडिति" यह राज्य तेरे लिए है अर्थात् यह राज्य तुझे दिया जाता है, अध्वर्यु अपने इस कथन से ही उस पुरुष को राज्याधिकारी बनाता है अर्थात् अध्वर्यु की इस घोषणा के अनन्तर ही वह राजा बनता है। पुनः अध्वर्यु उसे राज-सिंहासन पर बैठाता और उस से कहता है "यन्तासियमन इति" तू यन्ता अर्थात् शासनकर्त्ता और यम अर्थात् प्रजा को नियमपूर्वक चलाने योग्य है, अध्वर्यु अपने इस कथन से ही उस पुरुष को प्रजा का यन्ता अर्थात् शासनकर्त्ता बनाता है। पुनः अध्वर्यु उस पुरुष से कहता है "ध्रुवोऽसि धरुण इति" अर्थात् तू ध्रुव की भांति धर्म्म पर दृढ़ है, तू शासन भार को धारण कर सक्ता है, अध्वर्यु अपने इस कथन से ही उस पुरुष को इस लोक में ध्रुव और धरुण (प्रसिद्ध) करता है (अर्थात् अध्वर्यु की इस घोषणा ही से वह पुरुष ध्रुव और धरुण माना जाता है) पुनः अध्वर्यु उस पुरुष से कहता है "कृष्यैत्वा क्षेमायत्वा रय्यैत्वा पोषायत्वेति साधवे-त्वेति" तुझे कृषि अर्थात् खेती की उन्नति के लिए, तुझे क्षेम अर्थात् प्रजा के कल्याण और सुख के लिए, तुझे रयि अर्थात् ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिए, तुझे पोष अर्थात् प्रजा के पोषण पालन के लिए, तुझे साधु अर्थात् महात्माजनों की संख्या-वृद्धि के लिए अथवा साधु जनों की सेवा के लिए (राजा बनाते हैं)। (अध्वर्यु के ऐसे कथन के अनन्तर ही उक्त पुरुष उक्त प्रकार के कार्य्यों के सम्पादन योग्य माना जाता और तब प्रजा उसे अपना राजा स्वीकार करती थी)।

तदनन्तर अन्यान्य कई प्रकार की क्रियायें होती थीं पुनः इस यज्ञ में नियमानु-सार आमन्त्रित और उपस्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के सन्मुख राजा के आवेदन और अभिषेचन इस प्रकार होते थे :—

आवित्तोऽग्निर्गृहपतिरिति । ब्रह्म वाऽग्निस्तदेनं ब्रह्मणऽआवेदयति तद-स्मै सव मनुमन्यते तेनानुमतः सूयते ॥ ३२ ॥ आवित्तोऽइन्द्रो वृद्धश्रवा इति । क्षत्रं वाऽइन्द्रस्तदेनं क्षत्रायावेदयति तदस्मै सव मनुमन्यते तेनानुमतः सूयते ॥ ३३॥ आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावीति । प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ तदेनं प्रणोदानाभ्यामावे-दयति तावस्मै सव मनुमन्येते ताभ्यामनुमतः सूयतै ॥

आवित्त (विज्ञापित) होता है गृहपति अग्नि (अर्थात् पूर्व के अनेक संस्कारों के हो जाने के अनन्तर गृहपति अग्नि को अध्वर्यु द्वारा राजा के विषय में विशेष सुचना दी जाती है) ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण का (दूसरा नाम) अग्नि भी है इस कारण वह (अध्वर्यु) उस (राजा को) ब्राह्मण के (सन्मुख) आवेदन करता है (विज्ञापित करता है अर्थात् बतलाता है कि इस पुरुष को राजा बनाना है) और वह (ब्राह्मण समुदाय) उस (राजा को) अपने लिये स्वीकार करता है और उस ब्राह्मण समुदाय की स्वीकृति के अनन्तर (उस राजा का) अभिषेचन होता है॥३२॥

तदनन्तर आवित्त (विज्ञापित) होता है चिर प्रसिद्ध इन्द्र। क्षत्र अर्थात् क्षत्रिय का (दूसरा नाम) इन्द्र भी है इस कारण वह (अध्वर्यु) उस (राजा) को क्षत्रिय के (सन्मुख) आवेदन करता है (विज्ञापित करता है अर्थात् बतलाता है कि इस पुरुष को राजा बनाना है) और (वह क्षत्रियसमुदाय) उस (राजा को) अपने लिये स्वीकार करता है और उस (क्षत्रियसमुदाय) की स्वीकृति के अनन्तर (उस राजा का) अभिषेचन होता है ॥ ३३ ॥

तदनन्तर आवित्त (विज्ञापित) होते हैं व्रतों के धारण करने वाले मित्र और वरुण। प्राण को मित्र और उदान को वरुण कहते हैं (यहां वर्णों का प्रकरण है अग्नि शव्द से ब्राह्मण, इन्द्र शव्द से क्षत्रिय का वर्णन हो चुका अतः मित्र और वरुण इन दोनों शव्दों से प्रकरणानुसार वैश्य और शूद्रों का ही ग्रहण हो सक्ता है) इस कारण वह (अध्वर्यु) उस (राजा को) प्राणवत् पोषण करने वाले वैश्य और उदानवत् कार्य करने वाले शूद्र के (सन्मुख) आवेदन करता है (विज्ञापित करता है अर्थात् बतलाता है कि इस पुरुष को राजा बनाना है) और वे (वैश्य तथा शूद्र समुदाय) उस (राजा को) अपने लिये स्वीकार करते हैं और उन (वैश्य तथा शूद्रसमुदाय) की स्वीकृति के अनन्तर (उस राजा का) अभिषेचन होता है।

उक्त क्रियाओं से तात्पर्य यह निकलता है कि कोई भी पुरुष तब तक राजा नहीं बन सक्ता था जब तक कि राज्याभिषेक यज्ञ में नियमानुसार आमन्त्रित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रसमुदाय वा इन के प्रतिनिधि राजा बनने वाले पुरुष को अपना राजा स्वीकार नहीं कर लेते थे। इस के पश्चात् अन्यान्य भी कई क्रियायें होती थीं।

पुनः जब राजा का अभिषेक होने लगता था तो अध्वर्यु जल से उस के शरीर का मार्जन करता हुआ कहता था "इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमिति तद्यदेवास्य जन्म तत एवै तदाहास्यै विशऽइति यस्यै विशो राजा भवति" (शतपथ, काण्ड ९, अ० ४, ब्राह्मण २, प्रवाक ३) यह अमुक पुरुष का पुत्र अमुक स्त्री का पुत्र है अर्थात् जिन से उस ने जन्म ग्रहण किया है उन को बताता है, यह अमुक विश् अर्थात् प्रजा का है अर्थात् उस प्रजा को बताता है जिस का राजा यह बनता है ।

तदनन्तर कुछ और संस्कार होते थे फिर अध्वर्यु राजा की छाती को स्पर्श कर के कहता था "निषसाद धृतव्रत इति धृतव्रतो वै राजा न वाऽएष सर्वस्माऽइव वदनाय नसर्वस्माऽइव कर्म्मणे यदेव साधु वदेद्यतसाधु कुर्य्यात्तस्मै वाऽएष च श्रोत्रियश्चैतौ हवै द्वौ मनुष्येषु धृतव्रतौ तस्मादाह निषसाद धृतव्रत इति...." (शतपथ काण्ड ९, अ० ४, ब्राह्मण ४, प्रवाक ९) अर्थात् (प्रजा की रक्षा पोषण और वृद्धि के लिए धर्म्मपरायण बने रहने, पवित्र राजनियम की आज्ञा पालन करने कराने का व्रत जिस ने धारण किया है वह) धृतव्रत राजसिंहासन पर बैठ गया है, राजा का धर्म्म है कि वह अपने धारण किये हुए व्रतों की पालना अवश्य ही करे, अब यह न तो औरों की तरह मनमानी बातें बोल सक्ता और न मनमाना कार्य कर सक्ता है (अर्थात् इस की शक्तियां प्रतिबन्धित हैं) इसे उचित है कि अब यह उन्हीं बातों को बोले जो जो साधु अर्थात् (राज-नियमानुसार होने के कारण) श्रेष्ठ एवं कल्याण कारी हों तथा उन्हीं कार्यों को करे जो साधु अर्थात् श्रेष्ठ राजनियम-सङ्गत हों। क्योंकि मनुष्यों के बीच राजा और वेदों का ज्ञाता श्रोत्रिय ब्राह्मण ये ही दोनों धृत-व्रत अर्थात् प्रजा के कल्याणार्थ धारण किये हुए व्रतों वा राजनियमों की पालना भली भांति करते है अतः कहा गया कि यह धृतव्रत राजा राजसिंहासन पर बैठ गया है ।

तदनन्तर कुछ और संस्कार हो कर अध्वर्यु तथा उस के साथी "एनं पृष्ठतस्तूष्णीमेव दण्डैर्घ्नन्ति। तद्दण्डैर्घ्नन्तो दण्डवधमतिनयन्ति तस्माद्राजा दण्डयो यदेनं दण्डवधमतिनयन्ति" (शतपथ, काण्ड ९, अ० ४, ब्राह्मण ४, अनुवाक ७) राजा के पीठ पर धीरे २ दण्ड से चोट लगाते हैं मानो उस दण्ड की चोट से (दण्डवध) अर्थात् (दण्ड-नाश) के पार राजा को ले जाते हैं (अर्थात्) सिद्ध करते हैं कि राजा के लिए दण्ड का वध वा नाश नहीं हुआ है अर्थात् वह दण्ड नाश के परे है एवं दण्ड के भीतर है) इसी कारण राजा भी (अपराध करने पर) दण्ड योग्य है क्योंकि उसे दण्डवध के पार उतारते हैं ।

जो कुछ ऊपर लिखा गया है उस से साधारण बुद्धि के मनुष्य को भी ज्ञात हो सक्ता है कि राजा प्राचीन समय में निष्प्रतिबन्ध नहीं होता था प्रत्युत उसे राज-नियमों के अनुसार ही कार्य करना पड़ता था। यदि वह राजनियम-विरुद्ध कार्य करता तो पापी एवं दण्डनीय समझा जाता था जिस के निम्नलिखित प्रमाण भी हैं:—

यदि राजा पवित्र राजनियमानुसार शासन करता है तो वह अपनी प्रजा के आयधन का छठा भाग ले सक्ता है (अन्यथा नहीं) (वाशिष्ठ १, ४२)

आपस्तम्ब सूत्र (प्र० २, पटल ११, खण्ड २८, सूत्र १३) में लिखा है कि "यदि राजा एक दण्डनीय अपराध के लिए दण्ड नहीं देता तो उस को अपराधी समझना चाहिए"।

गौतम सूत्र (अध्याय १२, सूत्र ४८) में लिखा है कि "जो राजा न्याय-पूर्वक दण्ड देकर अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करता उसे प्रायश्चित्त करना चाहिये" (नोटः—प्रायश्चित्त एक प्रकार का स्वीकृत दण्ड है)।

वाशिष्ठ सूत्र (अध्याय १९, सूत्र ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४६) में लिखा है कि "यदि दण्ड के योग्य कोई अपराधी छूट जाय तो राजा को एक दिन और एक रात भूखा रहना चाहिए और राजा के पुरोहित को तीन दिन और तीन रात भूखा रहना चाहिए, यदि कोई निरपराध पुरुष को दण्ड मिल जाय तो राजपुरोहित को कृच्छ्रव्रत करना चाहिए और राजा को तीन दिन तथा तीन रात्रि भूखा रहना चाहिए ब्राह्मण के मारने वाले का पाप उस पर भी पड़ता है जो उस का अन्न खाता है, व्यभिचारिणी का पाप उस के असावधान पति पर भी, ब्रह्मचारी और यजमान के पाप असावधान गुरु और यज्ञ कराने वाले पर भी और चोर का पाप उस राजा पर भी पड़ता है जो चोर के अपराधों को क्षमा करता है, अपराधी के पापों का क्षमा करने वाला राजा पाप का भागी होता है"।

बौद्धायन सूत्र (प्र० २, अध्याय १, कण्डिका १, सूत्र १७) में लिखा है कि "यदि राजा चोर को दण्ड नहीं देता तो चोरी का पाप राजा को लगता है।

राजा को क्यों निष्प्रतिबन्ध न होना चाहिए इस का कारण शतपथ ब्राह्मण (काण्ड १३, प्र० २, ब्रा० ३, कं० ७ तथा ८) में इस प्रकार लिखा है:—

"राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशंघातुकः । विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति"

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीनराजवर्ग रहे तो (राष्ट्रमेव विश्याहन्ति) राज में

प्रवेश कर के प्रजा का नाश किया करें, जिस लिए अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके (राष्ट्री विशं घातुकः) प्रजा का नाशक होता है अर्थात् (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजा को खाए जाता है (अत्यन्त पीड़ित करता है) इस लिए किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिए, जैसे सिंह वा मांसाहारी रिष्ट पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता श्रीमान् को लूट खूंद अन्याय से दण्ड ले के अपना प्रयोजन पूरा करता है ।

गौतम-सूत्र अध्याय ग्यारह सूत्र १९, २०, २१ तथा २२ के देखने से बोध होता है कि राजा अपनी न्याय व्यवस्था, वेद, धर्म्म-शास्त्र (पवित्र राजनियम) अङ्ग तथा पुराणों (ब्राह्मणग्रन्थों) के अनुसार ही चला सक्ता था, भिन्न २ प्रान्तों वर्णों तथा वंशों सम्बन्धी नियम जो पवित्र राजनियम के प्रतिकूल नहीं उन्हें भी उसे प्रामाणिक मानना पड़ता था, कृषक, वणिक्, गड़रिए महाजन (ऋण देने वाले) और कारीगर अपने २ समूहों के विषय में यदि पवित्र राजनियम से अविरुद्ध विशेष नियम बना ते थे तो उन्हें भी राजा स्वीकार करता था । प्रत्येक वर्ण के प्रामाणिक प्रतिनिधियों की सम्मति ज्ञात कर ही वह किसी विषय में राजनियमोचित निष्पत्ति दे सक्ता था।

अतः सिद्ध हुआ कि प्राचीन समय में राजा निष्प्रतिबन्ध नहीं था । हम तो ऐसा भी समझते हैं कि प्राचीन समय में राजा की शक्तियां आज कल के व्यवस्था-बद्ध राजाओं की शक्तियों की अपेक्षा भी अधिकतर प्रतिबन्धित थीं क्योंकि इंगलैंड के राजा यदि चाहें तो किसी भी अपराधी का अपराध क्षमा कर सक्ते हैं परन्तु प्राचीन भारतीय राजा के सन्मुख जब किसी अपराधी के अपराध क्षमा करने की बात उपस्थित होती थी वह वेदज्ञ विद्वानों की सभा की सम्मति के बिना अपराध क्षमा नहीं कर सक्ते थे । इस विषय में गौतम सूत्र अध्याय १२, सूत्र ५१ तथा ५२ में लिखा है "अपराधी के शरीरिक बल, अपराध तथा यह ज्ञात कर कि इस ने अपराध बारम्बार तो नहीं किया है अपराधी को दण्ड देना चाहिए, अपराध क्षमा तभी किया जासक्ता है जब कि वेदज्ञ विद्वानों की सभा सम्मति दे कि अपराध क्षमा करने योग्य है" ।

गौतम सूत्र के उक्त प्रमाण से यह भी बोध होता है कि राजा की सम्मति से वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा की सम्मति अधिकतर प्रतिष्ठित थी अर्थात् वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा की सम्मति को राजा उठा नहीं सक्ता था अतः ज्ञात होता है कि राजा

को नियमों में रखने वाली एवं उस पर दबाव डाल ने वाली भी यही वेदज्ञ ब्राह्मणों की सभा होगी ।

प्राचीन राजसभा और वर्तमान पार्लिमेंट—आपस्तम्बसूत्र (२, १०। २५, ९) में लिखा है कि राजा को चाहिए कि नगर से दक्षिण की ओर एक सभा भवन (हाउसआफ़ पार्लिमेंट) बनवाए जिस के दक्षिण और उत्तर की ओर अनेक द्वार हों ताकि भीतर और बाहर जो कुछ हो रहा हो वह दृष्टिगोचर हो सके । आपस्तम्बसूत्र (२, १०, २५ सू० ६, ७, १२ तथा १३) में जो कुछ लिखा है उस का आशय यह है कि उक्त सभा भवन को अग्निहोत्र से सदा पवित्र रखना चाहिए तथा उस में मन बहलाव के सामान भी रखने चाहिए ।

गौतम सूत्र (अध्याय ११, सूत्र १९, २०, २१, २२, २३ २४ २५) में लिखा है कि राजा को चाहिए कि अपनी न्याय व्यवस्था, वेद, धर्म्मशास्त्र, अङ्गों तथा पुराणों (ब्राह्मण ग्रन्थों) के अनुसार चलावे, भिन्न भिन्न प्रान्तों, वर्णों तथा वंशों सम्बन्धी नियमों को भी यदि वे धर्म्मशास्त्र (पवित्र सनातन राजनियम) से विरुद्ध न हों तो उन्हें भी प्रामाणिक मानें, एवं कृषक, वणिक्, गडरिए महाजन (रुपए के लेन देन करने वाले) और कारीगर जो अपने अपने समूहों के विषय में नियम बनावें उन्हें भी प्रामाणिक माने, प्रत्येक वर्ण के **प्रामाणिक प्रतिनिधियों** की सम्मति भली भांति ज्ञात कर (वह किसी विषय में) राजानियमोचित निष्पत्ति देवे, सत्यासत्य के निर्णय के लिए (उक्त प्रतिनिधि आदि से) भली भांति तर्क वितर्क करे ताकि सत्य परिणाम पर पहुंच जाय, क्योंकि तर्क वितर्क के पश्चात् जो कुछ वह अन्तिम सम्मति देगा वह ठीक होगी, यदि तर्क वितर्क के अनन्तर भी उसे (प्रतिनिधियों के तथा अन्यों के कथन) उलझे हुए ज्ञात हों तो वह उन ब्राह्मणों (ब्राह्मण सभा) से सम्मति ले जो पवित्र त्रयी-विद्या (ज्ञान कर्म्म, उपासनामय वेदों) के गम्भीर ज्ञाता हों और उन की सम्मत्यनुसार अपना अन्तिम निर्णय देवे ।

वेदों का गम्भीर ज्ञाता कौन कहलाता है इस विषय में इसी गौतम सूत्र के अध्याय ८, सूत्र ४, ५, ६, ७ में लिखा है "वेदों का गम्भीर ज्ञाता वह है जो सांसारिक चक्रों (संसार की रीति भांति चलन व्यवहार, भिन्न २ प्रकार के मनुष्यों की शिष्टता का तथा कुटिलता इत्यादि इत्यादि) से अभिज्ञ हो, वेदों और वेदाङ्गो का ज्ञाता हो जो तर्क वितर्क तथा इतिहास और पुराणों (ब्राह्मण ग्रन्थों) में निपुण

हो जो उक्त वेदादि को ही प्रामाणिक मानता हो और जो अपना जीवन उक्त वेदादि की शिक्षानुसार ही (अति पवित्र) व्यतीत करता हो ।

ऐसे अनेक ब्राह्मण जिस सभा में हों उसे ब्राह्मणसभा वा ब्राह्मण-परिषद् कहते थे ।

उक्त लेखों से स्पष्ट विदित होता है कि राजा की राजधानी में सभाभवन बना रहता था । प्रजा के प्रतिनिधियों से सम्मति लेकर राजा वेद तथा धर्म्म शास्त्रादि अनुसार निर्णय करता था । जिस विषय में प्रतिनिधियों तथा अन्यों की सम्मति उलझी हुई रहती थी उस विषय में राजा ब्राह्मण-सभा की सम्मति लेता और तब निर्णय कर सक्ता था ।

जो कोई ऐतिहासिक बुद्धि का मनुष्य उक्त प्रमाणों को ध्यान-पूर्वक पढ़ेगा वह हमारे इस कथन के साथ अवश्य सम्मत होगा कि प्राचीन समय में भारतवर्ष का राज्य प्रजातन्त्र था । शोक है अभी तक हमें वे इतिहास नहीं मिल सके जिन से यह पता लगता कि उस समय प्रतिनिधियों का निर्वाचन किस प्रकार होता था जिस से हम यह निर्णय कर सक्के कि उस समय की राजसभाओं तथा वर्तमान पार्लिमेंटों के निर्वाचन में क्या अन्तर है। तथापि धर्म सूत्रों के देखने से निम्नलिखित भेद अवश्य प्रतीत होते हैं:—

आज कल सभ्यताभिमानी देशों की राज्य सभाओं में सब विषयों का निर्णय बहुपक्षानुसार होता है और विद्वान् से विद्वान् राजनीतिज्ञ तथा मूर्ख से मूर्ख कृषक की सम्मतियां पार्लिमेंट के सभ्यों के निर्वाचन में समान ही समझी जाती हैं । और पार्लिमेंट में भी सम्मति देते हुए एक साधारण सभासद् और एक विशालबुद्धि राजनीतिज्ञ की सम्मति भी समान ही मानी जाती है । इस रीति में बड़ा दोष यह है कि जब कभी कोई ऐसा राजनियम सभा के सन्मुख स्वीकृत होने को आता है जिस पर विचार करने के लिए सूक्ष्मबुद्धि और अनुभवी मस्तिष्क की आवश्यकता हो अर्थात् जिसे साधारण बुद्धि के सभासद् न समझ सक्ते हों तो बहुवार बहुपक्षानुसार राज्य-सभाएं ऊट पटाङ्ग राजनियम पास कर देती हैं जिस से देश और जाति को बड़ी हानि पहुंचती है । साधारण बुद्धि के सभासदों की इस अन्धाधुन्ध कार्य्यवाही पर किसी प्रकार का व्यवस्थापक प्रतिबन्ध नहीं है और यदि किसी देश में कोई प्रतिबन्ध है भी तो वह उस अन्धाधुन्ध के रोकने में असमर्थ है ।

उदाहरण के लिए इङ्गलिस्तान की व्यवस्था पर ही विचार कीजिए । वहां कोई राजनियम तब तक स्वीकृत नहीं समझा जाता जब तक कि वह सर्वसाधारण प्रतिनिधि सभा (House of Commons) तथा भूमि-स्वामियों की सभा (House of-Lords) में स्वीकृत न हो जावे (पास न होले) । कोई बुद्धिमान् पुरुष यह नहीं कह सक्ता कि लार्डों की सभा, कामंस की सभा के विचार सम्बन्धी दोषों का प्रतिकार कर सक्ती है । क्योंकि यह तो सम्भव है कि कामंस की सभा में विद्या और बुद्धि की बातें मान्य की दृष्टि से देखी जावें क्योंकि उस के सभासद् सर्वसाधारण के द्वारा चुने जाते हैं और उन को यह भी भय रहता है कि यदि उन से कोई मूर्खता हुई और उस का परिणाम देश की साधारण व्यवस्था पर प्रत्यक्ष रूप से हानिकारक सिद्ध हुआ तो वह पदच्युत किए जावेंगे परन्तु लार्ड सभा के सभ्यों को इस प्रकार का कोई भय नहीं है क्योंकि वह लार्ड घराने में जन्मधारण करने के कारण ही लार्ड सभा के सभासद् बने हुए हैं । आश्चर्य्य है कि एक लार्ड का पुत्र चाहे वह निर्बुद्धि निरक्षरभट्टाचार्य्य और दुराचारी ही क्यों न हो तो भी देश के राजानियमों का निर्णय करने में सम्मति देने का अधिकार रखता है ।

प्राचीन आर्य्यावर्त में जहां साधारण विषयों के सम्बन्ध में वही लोग राजनियम बनाते थे जिन पर उन नियमों का विशेष प्रभाव पड़ता था, विशेषावस्थाओं में अन्तिम-निर्णय का अधिकार ब्राह्मणों (ब्राह्मण-सभा) को था । ब्राह्मण किसी जाति विशेष का नाम न था प्रत्युत ब्राह्मण और विद्वान् धर्म्मात्मा पर्य्यायवाची शब्द थे । जिस काल का हम इतिहास लिख रहे हैं उस काल के साहित्य में स्पष्टतः उपदेश है कि ब्राह्मण को पवित्र तथा साधारण जीवन व्यतीत करना चाहिए और उसे धनी बनने का यत्न करना कभी भी उचित नहीं है । वाशिठसुत्र (अध्याय ६ सूत्र २३ तथा २५) में लिखा है कि वे सब गुण जिन से एक ब्राह्मण पहचाना जाता है ये हैं " योगसाधन, तपस्या, इन्द्रियदमन, उदारभाव, सत्यशीलता, (मन, वचन, कर्म्म की) पवित्रता, पवित्र (वेदों का ज्ञान, दयालुता, सांसारिक विद्याओं और व्यवहारों का ज्ञान, प्रज्ञाशालिता वा तीक्ष्णबुद्धिमत्ता, परमात्मा और परलोक में विश्वास (अर्थात् ये सब गुण जिन में होते थे वे ही ब्राह्मण माने जाते थे) । ऐसे ही ब्राह्मण जो मनोविकारों से रहित होते हैं, तप में निश्चल होते हैं, जिन के कान वेदमन्त्रों से भरे हुए हैं, जिन की ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां वश में आचुकी हैं, जो किसी भी प्राणी से द्रोह नहीं करते और जो दान मिलते समय भी अपने हाथ बन्द कर लेते हैं अर्थात् किसी से भी दान नहीं लेते, सब की रक्षा कर सक्ते हैं । "

अतः सिद्ध हुआ कि अन्तिम निश्चय ऐसे लोगों के हाथ में था जो धर्मात्मा, विद्वान्, निष्पक्ष और स्वार्थरहित थे ।

बौद्धायन सूत्र (१, १, १, सूत्र ९) में लिखा है कि सहस्त्र मूर्खों की सम्मति की अपेक्षा एक भी धर्मात्मा ब्राह्मण की सम्मति अधिक आदरणीय है। परन्तु बौद्धायन सूत्र (१, १, १, सूत्र १६) में लिखा है कि कई सहस्त्र (नाम मात्र के ब्राह्मणों का समूह भी राज्यनियम-निर्णायक-परिषद् नहीं कहला सक्ता, यदि वे अपने पवित्र कर्तव्यों (महायज्ञों और यज्ञों के अनुष्ठानादि का पालन नहीं करते हों, वेद न जानते हों, और केवल ब्राह्मणवंश में जन्मे हों ।

आहा ! राज्यप्रबन्ध की यह कैसी आदर्श रीति है ! राज्यनियम-व्यवस्था सर्व-साधारण के प्रतिनिधियों के हाथ में तो थी परन्तु उन की बुद्धि के दोषों के निवारणार्थ तथा अल्पपक्ष की रक्षा के लिए उक्त व्यवस्थाओं की प्रत्याख्या वा संशोधन का अधिकार देश के बड़े २ धर्म्मात्मा विद्वानों की परिषद् को था ।

शोक है कि इस राज्यप्रबन्ध के विषय में इस समय हमें अधिक ज्ञान नहीं है परन्तु इस में सन्देह नहीं कि इस का मौलिक सिद्धान्त स्वर्णीय है और यदि सभ्य संसार में इस का आभ्यासिक प्रचार हो जावे तो राजनियम-व्यवस्था सम्बन्धी अनेक प्रश्नों का अन्तिम निर्णय भी हो सक्ता है ।

प्रबन्ध (Executive) विभाग तथा न्याय (judicial) विभाग

आज कल कई सभ्य देशों में और विशेष कर इंगलैण्ड में न्यायविभाग प्रबन्धविभाग से बिल्कुल भिन्न है और ऐसा होना अति उत्तम है ।

क्योंकि यदि उभयाधिकारप्राप्त विचाराधिपति बड़ा ज्ञानी और धर्मात्मा भी हो तो भी अपने मन के आवेशों के आधीन होने के कारण हर समय पूर्ण निष्पक्षता से न्यायव्यवस्थानुसार अभियोगों का निर्णय उस के लिये कुछ कठिन हो जाता है। जब एक मनुष्य पुलिस के मुखिया की स्थिति में एक दोषी को पकड़वाता है और उस के विरुद्ध साक्षी एकत्रित करता वा कराता है और फिर न्यायकर्त्ता की स्थिति में अपने ही उपस्थित किए हुए अभियोग का निर्णय करने बैठता है तो ठीक परिणाम पर पहुंचने में उसे कुछ कठिनाई अवश्य होती है इस लिये आदर्श व्यवस्था वही है जो इङ्गलिस्तान में प्रचलित है और जो इङ्गलिश जाति की उच्च सभ्यता का एक बड़ा प्रमाण है ।

प्राचीनभारतवर्ष में दोनों विभाग पृथक् २ थे। आपस्तम्ब सूत्र के २ प्रश्न के १० पटल के २६ खण्ड में प्रबन्धविभाग के राज-पुरुषों का वर्णन है जिन के कई कर्तव्यों के साथ निम्नलिखित कर्तव्य भी बतलाए गए हैं:—

(१) चोरों से नगर की रक्षा करनी ।

(२) शुल्क अर्थात् टैक्सों का इकट्ठा करना ।

उक्त २६ खण्ड में यह भी लिखा है कि प्रबन्ध विभाग के पदों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों के पुरुष नियत हो सक्ते हैं। परन्तु यह नियम साधारणतः प्रचरित नहीं था प्रत्युत विशेष २ अवस्थाओं में प्रयुक्त होता था। क्योंकि क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वह वेदाध्ययन करे, यज्ञ करे, उदार हो, शस्त्रों को चलाए और शासन की उन्नति के लिए अपने बल को व्यय करे और एक प्रबन्धकर्त्ता के लिए आवश्यक है कि वह शस्त्रों को धारण करे और ब्राह्मण तथा वैश्य आपत्काल को छोड़ अन्य समयों में शस्त्र धारण नहीं करते थे (जैसा कि बौद्धायन सूत्र २, २, ४, १६, १७, १८ से ज्ञात होता है) अतः सिद्ध होता है कि प्रबन्धविभाग के पदों पर प्रायः क्षत्रिय ही नियुक्त हुआ करते थे।

न्यायाधीशों का वर्णन सूत्रग्रन्थों के अनेक स्थलों में आया है। आपस्तम्बसूत्र के दूसरे प्रश्न के ग्यारहवें पटल के २९ उनतीसवें खण्ड में न्यायाधीशों के जो गुण बतलाए गए हैं उन में प्रबन्ध एवं रक्षा का नाम नहीं है। वहां लिखा है कि "पूर्ण विद्वान्, पवित्र-कुलोत्पन्न, वृद्ध, तर्क में निपुण और अपने कर्तव्यों के पालन में जो सावधान हों उन्हीं को अभियोगों के निर्णय के लिए न्यायाधीश बनाना चाहिए" (आपस्तम्ब २, ११, २९, ५)। और क्योंकि उक्तगुण प्रायः ब्राह्मणों में ही पाए जाते थे इस कारण न्यायाधीशों के पदों को ब्राह्मण ही सुशोभित किया करते थे।

जिन राज्यनियम व्यवस्थाओं का निश्चय पूर्णविचार के पश्चात् ब्राह्मणों की महती परिषदों में होता था उन के अर्थों में शङ्का उपस्थित होने पर अथवा उन के परस्पर सम्बन्ध ज्ञात न होने पर अथवा उन के अन्यान्य प्रकारों से विवादास्पद होने पर इन का यथार्थार्थ दशावरा-सभा बतलाती थी। इस दशावरा सभा में जो दश-सभासद् होते थे उन में से चार सभासद् तो चारों वेदों के ज्ञाता होते थे, एक मीमांसक, एक वेदाङ्गों का ज्ञाता, एक धर्म्मशास्त्रों अर्थात राजनियमों का जानने वाला और तीन आश्रमों के तीन पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण सभासद् होते थे (बौद्धायन १, १, १, ८)।

वाशिष्ठ अध्याय १६ सूत्र २ में लिखा है कि राजमन्त्री वा स्वयम् राजा भी अभियोगों का निर्णय किया करे । इस से ज्ञात होता है कि बड़े २ अभियोग राजा के द्वारा भी निर्णित होते थे ।

वाशिष्ठ अध्याय १ सूत्र ४० तथा ४१ में लिखा है कि ब्राह्मण (धार्मिक विद्वान् लोग) सब के कर्तव्य बतलाएंगे और राजा तदनुसार ही सब का शासन करेगा ।

अतः न्यायाधीश चाहे कोई ब्राह्मण हो वा राज-मन्त्री वा स्वयम् राजा सब को ब्राह्मणों अर्थात् (धार्मिक विद्वानों) की महती सभा द्वारा निर्धारित राज्यव्यवस्थाओं के अनुसार (जो राजव्यवस्थाएं कि सदा वेदानुकूल होती थीं) निष्पत्ति देनी पड़ती थी ।।

भिन्न २ आचार्यों के मत—यद्यपि राजनियम सम्बन्धी मूल सिद्धान्तों में सब आचार्य्य सहमत थे तदपि विशेष २ बातों में जिन का मूल सिद्धान्तों के साथ साक्षात् सम्बन्ध न होता था वे भिन्न २ सम्मतियां रखते थे और यह न्यायाधीश के अधिकार में होता था कि किसी विशेष अभियोग के निर्णय करने में दोषी विशेष के स्वभाव, मानसिक और शारीरिक वैचित्र्य का ध्यान रखता हुआ किसी आचार्य्य की सम्मति के अनुसार दण्ड देवे । धर्म्म-व्यवस्थाओं के ज्ञाता आपस्तम्ब गौतम, वशिष्ठ और बौद्धायन नाम के चार जो बड़े २ आचार्य्य थे वे मूल सिद्धान्तों में किस प्रकार सहमत थे और गौण बातों में किस प्रकार उन का मत भेद था यह हम नीचे दर्शाते हैं:—

आपस्तम्ब सूत्र अध्याय १, पटल १, खं० १, सूत्र २ तथा ३ में लिखा है "यह धर्म्म व्यवस्थाएं प्रामाणिक इस कारण हैं कि धर्म्म-व्यवस्थाओं के जानने वालों की इन के विषय में एक सम्मति है । और धर्म्म-व्यवस्थाओं के जानने वालों की प्रामाणिक सम्मति का आधार वेद है ।"

गौतम सूत्र अध्याय १, सूत्र १ तथा २ में लिखा है "धर्म-व्याख्याओं का मूल स्थान वेद है तथा वेदज्ञों के इतिहास वा (स्मृति) तथा आचार से भी (अर्थात् वेदज्ञों के इतिहास वा स्मृति तथा आचार से भी धर्म्म व्यवस्थाएं निकली हैं)"

वाशिष्ठ सूत्र अध्याय १ सूत्र ४ तथा ५ में लिखा है "धर्म्म-व्यवस्थाओं का निश्चय, ईश्वरीय ज्ञान (वेद) तथा ज्ञानियों के इतिहास वा स्मृतियों से होता है । यदि इन से निश्चय न हो सके तो शिष्टों का आचार ही प्रामाणिक (एवं अनुकरणीय है ।"